श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला-ग्रंथांक-19

पूर्वधर श्री शय्यंभवसूरि विरचितम्

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

(चूलिका सहित)

संशोधित मूल पाठ, अन्वय तथा हिन्दी शब्दार्थ सहित

प्रकाशक

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला

(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)

समता भवन, बीकानेर

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

तृतीय सस्करण :
2100 प्रतिया, सन् ~~2003~~

अर्थ सहयोगी :
श्रीमान् श्रीचन्दजी सिपाणी

मूल्य : 20/-

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर–5

मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस
मोहता चौक, बीकानेर
Hello : 2521256

अर्थ सहयोगी परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ "श्री दशवैकालिक सूत्र" का प्रकाशन श्रेष्ठीवर्य श्रीमान् श्रीचन्दजी सिपाणी, गगाशहर के अर्थ सौजन्य से हो रहा है। धोरो की धरती उदयरामसर के श्रेष्ठी प्रवर स्व श्री भीखमचन्दजी एव श्रीमती हरकीदेवी से विरासत मे प्राप्त सस्कारो को सदैव वृद्धिगत रखते हुए आपने निष्काम सेवा भावना, सारल्य, उदात्तता एव उदारता से अपनी पृथक् पहचान बनाई है। आसाम के रोहा नगर मे पाट, धान आदि के व्यवसाय को नैतिकता, कर्मठता व प्रामाणिकता से करके आपने अर्थोपार्जन तो किया ही परन्तु सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक क्षेत्रो मे उदार भावना से सहयोग करते हुए सद्कार्यो को आगे बढाया। आपके पुत्र–त्रय, सर्वश्री घेवरचन्दजी, श्यामसुन्दरजी एव दिलीपकुमारजी, भी इन्हीं की भाति समाज सेवा एव जन कल्याणकारी कार्यो हेतु तत्पर रहते है। इनके गोहाटी मे नूतन गृह प्रवेश के प्रसग पर इस कृति के प्रकाशन मे अर्थ सहयोग प्रदान किया गया है। गौहाटी व बैंगलोर मे व्यावसायिक क्षेत्र मे सफलता अर्जित कर इन्होने अपने पितृ श्री की छवि को नई ऊचाई प्रदान की है।

श्री सिपाणीजी प्रखर बुद्धिशाली एव बहुमुखी प्रतिभा के धनी है, अद्भुत सूझ–बूझ व अथक परिश्रम से आपने व्यावसायिक प्रगति की है। वर्तमान मे आपके सुपुत्र व्यवसाय को आगे बढा रहे हैं। आपने अपना लक्ष्य सामाजिक क्षेत्र मे बहुआयामी सेवा का बनाया है और गुप्तदान भी देते रहते हैं।

समता विभूति आचार्य श्री नानेश एव उनके पट्टधर युवाचार्य श्री रामेश के उदयरामसर वर्षावास मे आपने जो सेवाए प्रदान की हैं वे प्रशसनीय,

स्तुत्य एव अनुकरणीय हैं। पूर्वाचार्यो व व्यसनमुक्ति के प्रेरक, श्रीवाल प्रतिबोधक आचार्य–प्रवर श्री 1008 श्री रामलालजी म सा के आप अनन्य आस्थावान श्रावक रत्न हैं तथा निष्काम, निस्वार्थ भाव से सेवा कर महान पुण्यवानी का अर्जन कर रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती किरणदेवी भी आपके अभिप्रायानुसार सत् समागम, सेवा व समर्पण भावना मे अग्रणी महिला रत्न है। विगत कई वर्षो से आप आचार्य भगवन् के चातुर्मास मे पूर्ण काल तक चौका लगाकर दर्शन, प्रवचन श्रवण, ज्ञान–ध्यान से लाभान्वित होती रही है। श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ को आपका अपूर्व सहयोग प्राप्त होता आ रहा है। सघ, समाज के उन्नयन हेतु आपका प्रशस्त योगदान रहा है।

सिपाणी दम्पति ने अपने पुत्रो को भी सद्सस्कार देकर समाज सेवा की प्रेरणा दी है। फलत वे भी साधुमार्गी जैन सघ गौहाटी, समता युवा सघ तथा अन्य सस्थाओ मे अनेक पदो पर सुशोभित हैं। सम्पूर्ण सिपाणी परिवार धर्मनिष्ठता, सघ/शासन समर्पणा व गुरु भक्ति से ओतप्रोत है। साहित्य प्रकाशन समिति– श्री अ.भा साधुमार्गी जैन सघ आपकी उदारता के प्रति आभार ज्ञापित करती है और विश्वास है कि सघ की प्रवृत्तियों के सातन्य हेतु आपका सहयोग मिलता रहेगा।

शान्तिलाल सान्ड

बीकानेर

सयोजक, साहित्य प्रकाशंन समिति
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर

प्रकाशकीय

श्री दशवैकालिक सूत्रम् मे साधु–आचार का वर्णन किया गया है। इसकी शैली, भाषा आदि इतने सरल हैं कि साधारण पाठक भी साधु-आचार के बारे मे सरलता से जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसीलिये श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर की परीक्षाओ मे भी यह सूत्र निर्धारित किया गया है।

इस सूत्र के और भी कई प्रकार के सस्करण प्रकाशित हुए है। किन्तु उनमे सूत्र का अन्वय सहित शब्दार्थ इस ढग से नहीं लिखा गया है, जिससे भावार्थ प्राय अलग से देने की आवश्यकता न रहे। इस सस्करण मे उक्त दृष्टिकोण को विशेष रूप से ध्यान मे रखा गया है।

यह सूत्र बहुत पहिले श्री सेठिया जैन ग्रन्थमाला बीकानेर द्वारा प्रकाशित हुआ था। किन्तु अप्राप्य होने से इसका प्रथम व द्वितीय सस्करण श्री गणेश स्मृति ग्रथमाला द्वारा प्रकाशित किया गया है।

यद्यपि प्रूफ सशोधन मे काफी ध्यान रखा गया है, फिर भी कोई त्रुटि रही हो तो पाठकगण सुधार करके सूचित करावे, जिससे आगामी सस्करण मे भूल सुधार करने मे सुविधा रहे।

राजमल चोरडिया — अध्यक्ष

मदनलाल कटारिया — महामत्री

शान्तिलालजी सांड — सयोजक, साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

विषयानुक्रमणिका

⌘ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ⌘

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

(मूल पाठ अन्वय सहित, हिन्दी शब्दार्थ और संक्षिप्त भावार्थ)

'दुमपुप्फिया' नामक पहला अध्ययन

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसति, जस्स धम्मे सया मणो।।1।।

अन्वयार्थ– (अहिसा) अहिसा– प्राणियो की हिसा का त्याग करना तथा जीवो की रक्षा करना (सजमो) सयम और (तवो) तपरूप (ध्रम्मो) श्रुतचारित्र रूप धर्म (इक्किट्ठ) उत्कृष्ट, श्रेष्ठ (मगल) मगल–पापो का नाश करने वाला है। (जस्स) जिस पुरुष का (मणो) मन (सया) सदा (धम्मे) धर्म मे लगा रहता है (त) उसको (देवा) देवता (वि) भी (नमसति) नमस्कार करते है।।1।।

भावार्थ– श्रुतचारित्र रूप धर्म मे लीन प्राणी देवो का भी पूज्य बन जाता है। 'भी' कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्यलोक के राजा, महाराजा, चक्रवर्ती का पूज्य तो है ही किन्तु देवलोक के देवो का भी पूज्य है।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं।।2।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (भमरो) भ्रमर (दुमस्स) वृक्ष के (पुप्फेसु) फूलो मे से (रस) रस को (आवियइ) पीता हे (य) ओर (पुप्फ) फूल को (ण किलामेइ) पीडित नही करता है (य) और (सो) वह भ्रमर (अप्पय) अपनी आत्मा को (पीणेइ) सन्तुष्ट कर लेता है।।2।।

भावार्थ– भ्रमर अनेक वृक्षा के फूलो से थोडा–थोडा रस चूसता है, इस प्रकार वह फूलो को कष्ट नही पहुचाता हुआ अपनी आत्मा को सन्तुष्ट कर लेता है। यहा वृक्ष का अर्थ अजुगुप्सित, अनिन्दितकुल, पुष्प का अर्थ घर तथा 'रस' का अर्थ प्रासुक एषणीय आहार समझना चाहिए।

एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाण भत्ते सणे रया।।3।।

अन्वयार्थ– (एमे ए) इसी प्रकार ये (लोए) लोक मे (जे) जो (मुत्ता) द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त (समणा) श्रमण–तपस्वी (साहुणो) साधु (सति) है वे (पुप्फेसु) फूलो मे (विहगमा) पक्षियो के (व) समान (दाणभत्तेसणे–णा) दाता द्वारा दिये हुए आहारादि की गवेषणा मे (रया) रत रहते हे।।3।।

भावार्थ– साधु गृहस्थियो को असुविधा न पहुचाते हुए अनेक घरो मे थोडा–थोडा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने मे ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं जिस प्रकार भ्रमर पुष्पो मे रत रहते हैं। द्रव्य परिग्रह अर्थात् धन–धन्य, दास–दासी, गाय–भैंस आदि। भाव परिगृह अर्थात क्रोध, मान, माया आदि।

उत्थानिका– गुरु महाराज के प्रति शिष्य प्रतिज्ञा करता है–

वय च वित्ति लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ।
अहा गडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा।।4।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (पुप्फेसु) फूलो मे (भमरा) भ्रमर (रीयते) अपना निर्वाह करते है। (च) उसी प्रकार (वय) हम साधु (अहागडेसु) गृहस्थो द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहारादि की (वित्ति) भिक्षा (लब्भामो) ग्रहण करेगे (य) जिससे (कोइ) किसी जीव को (न उवहम्मइ) कष्ट न हो।।4।।

भावार्थ– भ्रमर की भाति साधु लोग गृहस्थो द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहार मे से थोडा–थोडा लेकर अपनी सयम–यात्रा का निर्वाह करते है।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवति अणिस्सिया।
नाणापिंडरया दता, तेण वुच्चति साहुणो।।5।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (बुद्धा) तत्त्व के जानने वाले है और (महुगारसमा) भ्रमर के समान (अणिस्सिया) किसी एक घर आदि पर ही निर्भर नही (भवति) है और (नाणापिंडरया) अनेक घरो से थोडा–थोडा आहारादि लेने मे सन्तुष्ट है तथा (दता) इन्द्रियो के दमन करने वाले है। (तेण) इसी से वे (साहुणो) साधु (वुच्चति) कहलाते है।।5।। (त्तिबेमि) श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू–स्वामी से कहते है कि–हे आयुष्मन् जम्बू । मैने जैसा भगवान् महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।

भावार्थ– जैसे भ्रमर किसी एक पुष्प पर ही आश्रित नही होता अपितु अनेक फूलो से थोडा–थोडा रस लेता है, वैसे ही साधु एक ही घर आदि पर निर्भर नहीं है बल्कि अनेक घरो से थोडा–थोडा आहार लेकर सयम करा पालन करते है।



'सामण्णपुव्वयं' नामक दूसरा अध्ययन

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीअंतो, संकप्पस्स वसं गओ।।1।।

अन्वयार्थ-- (जो) जो (कामे) काम--भोगो को (न) नहीं (निवारए) त्यागता है वह (सकप्पस्स) इच्छाओ के (वस गओ) वश मे होकर (पए पए) पद--पद पर (विसीअतो--विसीदतो) खेदित होकर (सामण्ण) श्रमणधर्म का (कह नु) किस प्रकार (कुज्जा) पालन कर सकता है।।1।।

भावार्थ-- जो इन्द्रियो के विषयो का त्याग नहीं करता उसकी इच्छाएं हमेशा बढती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-- धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अत सर्वप्रथम इन्द्रियो को वश मे करना चाहिये।

वत्थ गंधमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ।।2।।

अन्वयार्थ-- (जे) जो पुरुष (अच्छंदा) पराधीन होने के कारण (वत्थ) वस्त्र (गध) गन्ध (अलकार) आभूषण (इत्थीओ) स्त्रियो को और (सयणाणि) शय्या को (न) नहीं (भुंजति) भोगता है। (से) वह (चाइत्ति) त्यागी (न) नहीं (वुच्चइ) कहा जाता है।।2।।

भावार्थ-- जो पुरुष रोग, वन्धन आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयो का सेवन नहीं कर सकता, वह त्यागी नहीं

कहलाता। किन्तु अपनी इच्छा से विषयो का त्याग करने वाला ही वास्तव मे सच्चा त्यागी कहलाता है।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठी कुव्वइ।
साहीणे चयई भोए, से हु चाइत्ति वुच्चई।।3।।

अन्वयार्थ– (जे) जो पुरुष (लद्धे) प्राप्त हुए (कते) मनोहर (पिए) प्रिय (भोए) भोगो को (वि) भी (पिट्ठीकुव्वई) पीठ दिखा देता है यानी उन भोगो से पराड्मुख हो जाता है, मुह मोड लेता है (य) और (साहीणे) स्वाधीन (भोए) भोगो को (चयई) त्याग देता है (से) वह (हु) निश्चय से (चाइत्ति) त्यागी (वुच्चइ) कहलाता है।।3।।

भावार्थ– भोगो की प्राप्ति होने पर भी और भोगने की स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगो को नही भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है।

टिप्पणी– **'लद्धे वि'** पद का अर्थ वर्तमान मे प्राप्त एव भविष्य मे प्राप्त होने वाले सभी भोगो से समझना चाहिए।

समाइ पेहाइ परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा।
न सा महं नो वि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं।।4।।

अन्वयार्थ– साधु का (समाइ पेहाई) समतामय दृष्टिपूर्वक (परिव्वयतो) गतिशील (मणो) मन (सिया) कभी (बहिद्धा) सयम से बाहर (निस्सरई) निकल जाय तो (सा) वह स्त्री (मह) मेरी (न) नही है और (अह) मै (पि) भी (तीसे) उसका (नो वि) नहीं हू। (इच्चेव) इस प्रकार विचार कर (ताओ) उस स्त्री पर से (राग) राग भाव को (विणइज्ज) दूर करे।।4।।

आयावयाहि चय सोगमल्ल, कामे कमाही कमिय खु दुक्खं।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए।।5।।

अन्वयार्थ– (आयावयाहि) आतापना लो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो (सोगमल्ल) सुकुमारता को (चय) त्याग दो (कामे) काम–भोगो को (कमाही) दूर करो (खु) निश्चय ही (दुक्ख)

दु ख (कमिय) दूर होगा (दोस) द्वेष को (छिदाहि) नष्ट करो (राग) राग को (विणएज्ज) दूर करो (एव) ऐसा करने से (सपराए) ससार मे (सुही) सुखी (होहिसि) होओगे।।5।।

भावार्थ– पूर्वोक्त गाथा मे सूत्रकर्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरग उपाय बतलाया है। अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि सयम से बाहर जाते हुए मन को वश मे करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग करके ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग–द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है।

टिप्पणी– **'आयावयाहि'** पद के अर्थ मे शरीर सुखाने का भाव है– शीत एव धूप की आतापना लेना और तपस्या द्वारा तथा आतपना के द्वारा मनोगत विकारो का शमन करना।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे।।6।।

अन्वयार्थ– (अगधणे) अगन्धन नामक (कुले) कुल मे (जाया) उत्पन्न हुए सर्प (जलिय) जलती हुई (धूमकेउ) धुआ निकलती हुई (दुरासय) कठिनाई से सहने योग्य (जोइ) अग्नि मे (पक्खदे) कूद जाते है किन्तु (वतयं) वमन किये हुए विष को (भोत्तु) भोगने की (न इच्छति) इच्छा नहीं करते।।6।।

भावार्थ– सती राजमती रथनेमि को कहती है कि अगधन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प अग्नि मे जलकर मर जाना तो पसद करते है किन्तु उगले हुए विष को पुन पीना नहीं चाहते।

टिप्पणी– **'वंतयं भोत्तुं'** का आशय है– किसी व्यक्ति को साप काट ले और मत्रवादी द्वारा बुलाए जाने पर वह सर्प दशस्थान पर छोडे हुए विष को पुन चूसने का अर्थात् वमन किए हुए विष को पुन पीने का उपक्रम करे। श्रेष्ठ अगधन कुल के सर्प इसकी अपेक्षा पास मे जलती हुई अग्नि मे जल कर भस्म होना श्रेयस्कर मानते हैं।

धिरत्थु तेऽजसो कामी, जो त जीविय कारणा।
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे।।7।।

अन्वयार्थ– (अजसोकामी) हे अपयश के इच्छुक। (ते) तुझे (धिरत्थु) धिक्कार हो (जो) जो (त) तू (जीविय कारणा) असयम रूप जीवन के लिए (वत) वमन किये हुए को (आवेउ) पीना (इच्छसि) चाहता है इसकी अपेक्षा तो (ते) तेरे लिए (मरण) मरजाना (सेय) श्रेष्ठ (भवे) है।।7।।

भावार्थ– सती राजमती चचलचित्त बने हुए रथनेमि को सयम मे स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि सयम धारण करके असयम मे आना निन्दनीय है। ऐसे असयमपूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो सयमावस्था मे मृत्यु हो जाना अच्छा है।

अह च भोग रायस्स, त चऽसि अधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो, संजम निहुओ चर।।8।।

अन्वयार्थ– (अहच) मै राजमती (भोगरायस्स) भोजराज–उग्रसेन की पुत्री हू (च) और (त) तू (अधगवण्हिणो) अन्धकवृष्णि–समुद्रविजय का पुत्र (असि) है (गधणाकुले) गन्धन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प के समान (मा होमो) मत हो किन्तु (निहुओ) शात रहकर (सजम) सयम का (चर) पालन कर।।8।।

भावार्थ– राजमती रथनेमि से कहती है कि अपन दोनो उच्चकुल मे उत्पन्न हुए है। अत उगले हुए विष को वापस पी जाने वाले गन्धन कुल के साप के समान न होना चाहिए।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारीओ।
वाया विद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि।।9।।

अन्वयार्थ– (त) हे मुनि। तुम (जा जा) जिन–जिन (नारीओ) स्त्रियो को (दिच्छसि) देखोगे (जइ) यदि उन–उन पर (भाव) बुरे

भाव (काहिसि) करोगे तो (वाया विद्ध–विद्धो) वायु से प्रेरित (हडीव्व) हड नामक वनस्पति की भांति (अट्ठिअप्पा) अस्थिर आत्मा वाले (भविस्ससि) हो जाओगे।।9।।

भावार्थ– राजमती रथनेमि से कहती है कि हे मुनि ! जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम–मोहित हो जाओगे तो जैसे समुद्र के किनारे खडा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक ही झोके से समुद्र मे गिर पडता है वैसे ही तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायेगी।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ।।10।।

अन्वयार्थ– (सो) वह रथनेमि (तीसे) उस (सजयाइ) सयमवती साध्वी के (सुभासिय) सुभाषित (वयण) वचन को (सोच्चा) सुनकर (धम्मे) धर्म मे (सपडिवाइओ) स्थिर हो गया (जहा) जैसे (अकुसेण) अकुश से (नागो) हाथी वश मे हो जाता है।।10।।

भावार्थ– ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचनो को सुनकर रथनेमि धर्ममार्ग मे स्थिर हो गये, जिस प्रकार अंकुश से हाथी वश मे आ जाता है।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो।।11।।त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (सबुद्धा) तत्वज्ञ (पडिया) पाप से डरने वाले पण्डित (पवियक्खणा) विचक्षण पुरुष (एव) ऐसा ही (करति) करते हैं अर्थात् (भोगेसु) भोगो से (विणियट्टंति) निवृत्त हो जाते हैं (जहा) जैसे (से) वह (पुरिसुत्तमो) पुरुषो मे उत्तम रथनेमि भोगो से निवृत्त हो गया।।11।। (त्तिबेमि) हे जम्बू ! जैसा मैने भगवान् से सुना है, वैसा ही कहता हूं।

भावार्थ– जो विवेकी होते हैं वे विषयभोगो के दोषो को जानकर उनका परित्याग कर देते हैं जैसे रथनेमि ने परित्याग कर दिया।



'खुड्डियायार कहा' नामक तीसरा अध्ययन
(साधु के 52 अनाचार)

जो निर्ग्रन्थ महर्षियो को आचरण करनेयोग्य नही है ऐसे 52 अनाचारो का वर्णन इस अध्ययन मे किया गया है।

संजमे सुट्ठिअप्पाण, विप्पमुक्काण ताइणं।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गथाण महेसिणं।।1।।

अन्वयार्थ– (सजमे) सयम मे (सुट्ठिअप्पाण) भली–भाति स्थित आत्मा वाले (विप्पमुक्काण) सासारिक बन्धनो से रहित (ताइण) छ काय जीवो के रक्षक (तेसि) उन (निग्गथाण) परिग्रहरहित (महेसिण) महर्षियो के (एय) ये आगे कहे जाने वाले (अणाइण्ण) अनाचीर्ण–अनाचार है।।1।।

उद्देसियं कीय गडं, नियागमभिहडाणि य।
राइभत्ते सिणाणे य, गंध मल्ले य वीयणे।।2।।

अन्वयार्थ– 1 (उद्देसिय) आद्देशिक, 2 (कीयगड) साधु के लिये खरीदा हुआ, 3 (नियाग) किसी का आमत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, एक घर से नित्यप्रति लिया जाने वाला आहार 4 (अभिहडणि) साधु के लिये सामने लाया हुआ, (य)

किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधाकर्म और यदि दूसरा साधु ले तो औद्देशिक कहलाता है।

ओर 5 (राइभत्ते) रात्रि–भोजन, (य) और 6 (सियाणे) स्नान 7 (गध) सुगन्धित पदार्थो का सेवन, 8 (मल्ले) फूलादि की माला, (य) और 9 (वीयणे) पखादि से हवा लेना।।2।।

स्नान के दो भेद किए गए है– देशस्नान व सर्वस्नान। मुख, पेर, सिर आदि धोना देशस्नान है तथा पूरे शरीर को धोना सर्वस्नान है। साधु दोनो प्रकार के स्नान के त्यागी होते है।

संनिही गिहिमत्ते य, राय पिंडे किमिच्छए।
सवाहणा दंतपहोयणा य, संपुच्छणा देह पलोयणा य।।3।।

अन्वयार्थ– 10 (सनिही) घी, गुड आदि वस्तुओ का सचय करना, 11 (गिहिमत्ते) गृहस्थ के पात्र मे भोजन करना, (य) और 12 (रायपिडे) राजपिड का ग्रहण करना, 13 (किमिच्छए) 'तुमको क्या चाहिए' इस प्रकार याचक से पूछ कर जहा उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो ऐसी दानशाला आदि से आहरादि लेना, 14 (सवाहणा) मर्दन करना, (य) और 15 (दतपहोयणा) अगुली आदि से दात धोना, 16. (सपुच्छणा) गृहस्थो से सावद्य कुशल प्रश्न आदि पूछना, (य) और 17. (देहपलोयणा) दर्पण आदि मे मुख देखना।।3।।

अट्ठावए य नालीए, छत्तरस य धारणट्ठाए।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो।।4।।

अन्वयार्थ– 18. (अट्ठावए) जूआ खेलना (य) ओर (नालीए) नालिका चौपडपासा, शतरज आदि खेलना, (य) और 19 (छत्तस्सधारणट्ठाए) छत्र धारण करना, 20 (तेगिच्छ) रोग का इलाज करना, 21 (पाए पाहणा) पैरो मे जूते आदि पहनना, (च) और 22 (जोइणो) अग्नि का (समारभ) आरभ करना।।4।।

टिप्पणी– 'तेगिच्छं' – जिनकल्पी एव प्रतिमाधारी साधक के अतिरिक्त स्थविरकल्पी साधक के लिए सयम–पालन की दृष्टि से प्रासुक औषधि लेने का निषेध नहीं है। श्रावक के बारहवे अणुव्रत

मे गृहस्थ द्वारा अन्य वस्तुओ सहित उचित औषध–भेषज भी साधु को बहराने की भावना भाने का पाठ इस सम्बन्ध मे प्रमाणस्वरूप है।

सिज्जायरपिड च, आसदी पलियकए।
गिहतरनिसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य।।5।।

अन्वयार्थ– 23 (सिज्जायरपिड) शय्या का आहार लेना, (च) और 24 (आसदी) बेत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, 25 (पलियकए) पलग पर बैठना, 26 (गिहतरनिसिज्जा) गृहस्थ के घर बैठना या दो घरो के बीच बैठना, (य) और 27 (गायस्सुव्वट्टणाणि) मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना।

गिहिणो वेयावडियं, जा य अजीव वत्तिया।
तत्ता निव्वुड भोइत्त आउरस्सरणाणि य।।6।।

अन्वयार्थ– 28 (गिहिणो) गृहस्थ की (वेयावडिय) वैयावच्च करना अर्थात् उसे आहारादि देना, (य) और (जा) जो 29 (आजीववत्तिया) जाति, कुल आदि बताकर आजीविका करना, 30 (तत्तानिव्वुड भोइत्त) जो अच्छी तरह से प्रासुक नही हुआ है ऐसे मिश्र आहार–पानी का सेवन करना, (य) और 31 (आउरस्सरणाणि) रोग अथवा भूख से पीडित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थो को या माता–पिता आदि सबधियो को याद करना या शरण चाहना।।6।।

मूलए सिंगबेरे य, उच्छु खडे अनिव्वुडे।
कदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए।।7।।

अन्वयार्थ– 32 (अनिव्वुडे) सचित्त (मूलए) मूला (य) और 33 (सिगबेरे) अदरख–आदा, 34 (उच्छुखडे) इक्षुखण्ड–गडेरी, (य) और 35 (कदे) कन्द–वजकन्द आदि 36 (सच्चित्ते) सचित्त (मूले) मूल जड, 37. (फले) फल, आम, नीबू, आदि (य) और 38 (आमए (बीए) तिलादि बीजो का सेवन करना।।7।।

सोवच्चले सिधवे लोणे, रोमा लोणे य आमए।

सामुद्दे पसुखारे य, काला लोणे य आमए।।8।।

अन्वयार्थ– 39 (आमए) सचित्त (सोवच्चले) सोवर्चल–सचल नमक, 40 (सिधवे लोणे) सैन्धव–सींधा नमक, 41. (रोमालोणे) रोमा नमक–रोमकक्षार, 42. (सामुद्दे) समुद्र का नमक, (य) और 43 (पसुखारे) ऊसर नमक, (य) और 44. (आमए) सचित्त (कालालोणे) काला नमक का सेवन करना।।8।।

धूवणे त्ति वमणे य, वत्थी-कम्म विरेयणे।
अंजणे दंतवणे य, गायब्भंग विभूसणे।।9।।

अन्वयार्थ– 45 (धूवणे त्ति) अपने वस्त्र आदि को धूप देकर सुगन्धित करना, (य) और 46 (वमणे) औषधि आदि से वमन करना, 47 (वत्थीकम्म) मलादि की शुद्धि के लिए वस्ती कर्म करना, 48. (विरेयणे) जुलाब लेना, 49 (अजणे) आखो मे अजन लगाना, (य) और 50 (दतवणे) दतौन से दात साफ करना, मस्सी आदि लगाना, 51 (गायब्भग) सहस्त्रपाक आदि तैलो से शरीर की मालिश करना, (य) और 52 (विभूसणे) शरीर को विभूषित करना।।9।।

सव्वमेयमणाइन्नं, निग्गंथाण महेसिणं।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं।।10।।

अन्वयार्थ– (संजममिम) सजम मे (य) और तप मे (जुत्ताण) लगे हुए (लहुभूयविहारिण) वायु के समान अप्रतिबद्ध विहार करने वाले (निग्गथाण) निर्ग्रन्थ (महेसिण) महर्षियो के (एय) ये (सव्व) सब अणाइन्नं अनाचीर्ण–अनाचार हैं।।10।।

टिप्पणी– लहुभूयविहारिणो अर्थात् हल्के होकर विचरण करना। वस्त्रादि उपाधि कम रखना द्रव्य से लघुभूतविहारी है तथा अप्रतिबद्ध–अनासक्त होकर विचरण करना भाव से लघुभूतविहारी है।

पंचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया।

पच निग्गहणा धीरा, निग्गथा उज्जुदसिणो।।11।।

अन्वयार्थ– (पचासव परिण्णाया) पाच आश्रवो के त्यागी (तिगुत्ता) मन, वचन और काया गुप्ति से युक्त (छसुसजया) छ काय जीवो के रक्षा करने वाले (पचनिग्गहणा) पाच इन्द्रियो के निग्रह करने वाले (धीरा) परीषह उपसर्ग सहन करने मे धीर (उज्जुदसिणो) सरल स्वभावी (निग्गथा) निर्ग्रथ होते है।।11।।

आयावयंति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसलीणा, सजया सुसमाहिया।।12।।

अन्वयार्थ– (सुसमाहिया) प्रशस्त समाधिवत (सजया) सयमी मुनि (गिम्हेसु) ग्रीष्म ऋतु मे (आयावयति) सूर्य की आतापना लेते है। (हेमतेसु) हेमन्त ऋतु मे–शीतकाल मे (अवाउडा) अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित रहते है, (वासासु) वर्षा ऋतु मे (पडिसलीणा) कछुए की तरह इन्द्रियो को वश मे करके रहते है।

भावार्थ– जिस ऋतु मे जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है, उस ऋतु मे मुनि वही तपस्या करते है।

परीसहरिऊ दता, धूअमोहा जिइदिया।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो।।13।।

अन्वयार्थ– (परीसहरिऊदता) परीषह रूपी शत्रुओ को जीतने वाले, (धूअमोहा) मोह–ममता के त्यागी, (जिइदिया) इन्द्रियो को जीतने वाले (महेसिणो) महर्षि (सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा) सब दु खो का नाश करने के लिए, मोक्षप्राप्ति के लिये (पक्कमति) पराक्रम करते है, सयम और तप मे प्रवृत्त होते है।।23।।

दुक्कराइ करित्ताण, दुस्सहाइ सहित्तु य।
केइत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झन्ति नीरया।।14।।

अन्वयार्थ– (केइत्थ) कितनेक साधक इस भव मे (दुक्कराइ) दुष्कर क्रियाओ को (करित्ताण) करके (य) और (दुस्सहाइ) दु सह कष्टो

को (सहित्तु) सहन करके (देवलोएसु) देवलोक मे उत्पन्न होते हैं और (केइ) कितनेक (नीरया) कर्मरज से रहित होकर (सिज्झन्ति) सिद्ध हो जाते है, मोक्ष चले जाते हे।।14।।

खवित्ता पुव्व कम्माइं, संजमेण तवेण य।

सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे।।15।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (सिद्धिमग्ग) मोक्ष मार्ग को (अणुप्पत्ता) प्राप्त साधक (ताइणो) छ काय जीवो के रक्षक मुनि (सजमेण) सयम से (य) और (तवेण) तप से (पुव्वकम्माइं) पहले बधे हुए कर्मो को (खवित्ता) क्षय करके (परिनिव्वुडे) निर्वाण प्राप्त करते है।।15।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।



‘छज्जीवणिया’ नामक चौथा अध्ययन

इस अध्ययन मे छ काय जीवो के स्वरूप तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है–

सुयं मे आउस ! तेणं भगवया एवमक्खाय,
इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेण भगवया
महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता,
सेय मे अहिज्जिउ अज्झयणं धम्मपण्णत्ती।।

अन्वयार्थ– (आउस) हे आयुष्मन् शिष्य ! (मे) मैने (सुय) सुना है कि (तेण) उन (भगवया) भगवान् ने (एव) इस प्रकार (अक्खाय) कहा है कि (इह) इस जिनशासन मे (खलु) निश्चय से (छज्जीवणिया) छज्जीवणिया– छ काय के जीवो का कथन करने वाला (नाम) नामक (अज्झयण) अध्ययन है। (समणेण) श्रमण तपस्वी (कासवेण) काश्यपगोत्रीय (भगवया) भगवान् (महावीरेण) महावीर ने (पवेइया) सम्यक् प्रकार से उसकी प्ररूपणा की है, (सुअक्खाया) सम्यक् प्रकार से कथन किया है, (सुपण्णत्ता) भली प्रकार से बतलाया है। शिष्य ने पूछा– भगवन् ! क्या (अज्झयण) उस अध्ययन का (अहिज्जिउ) अध्ययन करना–सीखना (मे) मेरे लिए (सेय) कल्याणकारी है ? गुरु ने कहा– हा ! (धम्मपण्णत्ती) उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण
समणेण भगवया महावीरेणं कासवेण
पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे
अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपण्णत्ती।।

अन्वयार्थ– (कायरा) वह छज्जीवणिया अध्ययन कौनसा है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिये कल्याणकारी है ? शेष शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।

इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण,
समणेण भगवया महावीरेण कासवेण
पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे,
अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपण्णत्ती।।

अन्वयार्थ– अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते है कि (इमा) वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।

तंजहा-पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया,
वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया।।

अन्वयार्थ– (तजहा) जैसे कि (पुढविकाइया) पृथ्वी ही जिनका शरीर है, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव, (आउकाइया) पानी ही जिनका शरीर है, ऐसे अप्काय के तथा जल मे रहने वाले अप्काय के जीव, (तेउकाइया) अग्निकाय सम्बन्धी जीव तथा अग्नि ही जिनका शरीर है, ऐसे अग्निकाय के जीव, (वाउकाइया) वायु मे रहने वाले एव जिनका शरीर वायु ही है, ऐसे वायुकाय के जीव, (वणस्सइ-काइया) वनस्पति ही जिनका शरीर है, ऐसे तथा वनस्पति मे रहने वाले वनस्पतिकाय के जीव, (तसकाइया) त्रसकाय के तथा त्रसकाय मे रहने वाले जीव।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ

सत्थपरिणएण। तेऊ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। वाऊ चित्तमतमक्खाया अणेग जीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण। वणस्सई चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण।

अन्वयार्थ– (सत्थपरिणएण) शस्त्र परिणत के (अन्नत्थ) सिवाय (पुढवी) पृथ्वीकाय (आऊ) अप्‌काय (तेऊ) अग्निकाय (वाऊ) वायुकाय और (वणस्सई) वनस्पतिकाय (चित्तमतमक्खाया) सचित्त कही गई है (अणेग जीवा) वह अनेक जीवो वाली है, (पुढोसत्ता) उसमे अनेक जीव पृथक्–पृथक् रहे हुए है।

भावार्थ– पाचो स्थावरकाय सचित्त है। वे अनेक जीवरूप है। उन जीवो का अस्तित्व पृथक्–पृथक् है। इन कायो के जो शस्त्र है उनसे जब तक परिणत न हो जाय अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाय तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र परिणत होने पर अचित्त हो जाते है। पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पति (सम्मूर्छिम दूब, अकुर आदि) तक की शस्त्र–परिणति की स्थिति द्रव्य–क्षेत्र–काल एव भाव की मर्यादा से विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखती है। अत इस विषय की जानकारी विद्वान गुरुजनो से कर लेनी चाहिए। आगे वनस्पतिकाय का विशेष खुलासा करते है।

तंजहा-अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया, वीयरुहा संमुच्छिमा तणलया वणस्सइ-काइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेग-जीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण।

अन्वयार्थ– (तजहा) वह इस प्रकार है– (अग्गबीया) ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है जैसे कोरट का वृक्ष, (मूलबीया) जिसका बीज मूल भाग मे होता है जैसे कद आदि, (पोरबीया) जिसका बीज पर्व–गाठ मे होता है जैसे गन्ना–ईख

आदि, (खधबीया) जिसका बीज स्कन्ध मे होता है जैसे बड पीपल आदि, (बीयरुहा) बीज से उगने वाली वनस्पति जैसे चौबीस प्रकार के धान्य, (समुच्छिमा) बिना बीज के अपने–आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति जैसे दूब अकुर आदि, (तणलया) तृण–लता आदि ये सब (वणस्सइकाइया) वनस्पतिकायिक है, (अणेगजीवा) उनमे अनेक जीव है, (पुढोसत्ता) वे भिन्न–भिन्न सत्ता (अस्तित्व) वाले है। (सत्थरपरिणएण) शस्त्र परिणत के (अन्नत्थ) सिवाय (सबीया) बीज सहित वनस्पति (चित्तमतमक्खाया) सचित्त कही गई है। अब त्रस काय का वर्णन किया जाता है–

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तजहा-अंडया, पोयया, जराउया, रसया, संसेइमा, संमुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया। जेसिं केसिं च पाणाणं, अभिक्कंतं, पडिक्कंतं, संकुचियं, पसारियं, रुयं, भंतं, तसियं, पलाइयं, आगइ-गई विन्नाया, जेय कीडपयंगा, जा य कुथुपिवीलिया, सव्वे बेइन्दिया, सव्वे तेइन्द्रिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुआ, सव्वे देवा, सव्वे पाणा, परमाहम्मिया, एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चइ।

अन्वयार्थ– (से) अब (जे) जो (इमे) ये आगे कहे जाने वाले (तसापाणा) त्रस प्राणी है वे (पुण) फिर (अणेगे) अनेक तथा (बहवे) बहुत प्रकार के है। (तजहा) जैसे कि (अडया) अडे से उत्पन्न होने वाले, (पोयया) पोतज, जन्म के समय चर्म से आवृत होकर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले, (जराउया) जरायुसहित पैदा होने वाले, (रसया) रस मे उत्पन्न होने वाले–द्वीन्द्रियादिक, (संसेइमा) पसीने से उत्पन्न होने वाले, (समुच्छिमा) समूर्च्छिम अर्थात् देव नारकी सिवाय–बिना माता–पिता के सयोग से उत्पन्न होने वाले जीवो, (उब्भिया) उद्भिज–जमीन को फोडकर उत्पन्न होने वाले, (उववाइया) उपपात जन्म वाले देव नारकी आदि, (जेसिकेसिच) जिनमे से कई (पाणाण)

प्राणियो का (अभिक्कत) सामने आना, (पडिक्कत) पीछे सरकना, (सकुचिय) शरीर को सकुचित कर लेना, (पसारिय) शरीर को फैलाना, (रुय) शब्द का उच्चारण करना, (भत) इधर–उधर भ्रमण करना, (तसिय) भयभीत होना, (पलाइय) डर से भागना, (आगइ-गई) आगति और गति (विन्नाया) आदि क्रियाएँ लोक मे विज्ञात है अर्थात् कई त्रस प्राणियो की ये क्रियाएँ स्पष्ट रूप से जानी जाती है, देखी जाती है। (य) और (जे) जो (कीडपयगा) कीडे और पतगिये (य) और (जा) जो (कुथुपिवीलिया) कुथवा और चीटिया है वे (सव्वे) सब (बेइदिया) द्वीन्द्रिय, (सव्वे)' सब (तेइदिया) त्रीद्रिय (सव्वे) सब (चउरिंदिया) चतुरिन्द्रिय (सव्वे) सब (पचिदिया) पचेन्द्रिय, (सव्वे) सब (तिरिक्खजोणिया) तिर्यच, (सव्वे) सब (नेरइया) नरक के जीव, (सव्वे) सब (मणुआ) मनुष्य, (सव्वे) सब (देवा) देव, (सव्वे) सब (पाणा) प्राणी (परमाहम्मिया) परम सुख के अभिलाषी है। (एसो) यह (खलु) निश्चय करके (छट्ठो) छठा (जीवनिकाओ) जीव-निकाय–जीवो का समूह (तस्सकाओत्ति) त्रसकाय (पवुच्चइ) कहा जाता है।

भावार्थ– सभी प्राणी सुख को चाहते है। अत किसी की हिसा न करनी चाहिए।

इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दडं समारभिज्जा, नेवन्नेहिं दंड समारंभाविज्जा, दंडं समारभंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

अन्वयार्थ– मुनि (इच्चेसि) इन (छण्ह) छ (जीवनिकायाण) जीवनिकायो के (दड) हिसा रूप दड का (सय) स्वय (नेव समारभिज्जा) आरम्भ न करे अर्थात् हिसा न करे, (अन्नेहि) दूसरो से (दड) हिसा रूप दड का (नेव समारभाविज्जा) आरम्भ न करावे और (दड) हिसा रूप दड का (समारभते) आरम्भ करते हुए (अन्नेऽवि)

अन्य जीवो को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे। अब शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मै (जावज्जीवाए) यावज्जीवन– जीवनपर्यन्त (तिविह) तीन करण से– करना, कराना और अनुमोदना से और (तिविहेण) तीन योग से अर्थात् (मणेण) मन से (वायाए) वचन से और (काएण) काया से (न करेमि) हिसा न करूगा, (न कारवेमि) न दूसरो से हिसा कराऊगा और (करतपि) हिसा करते हुए (अन्न) दूसरो को (न समणुजाणामि) भला भी नही समझूगा। (भते) हे भगवन् ! (तस्स) अब तक जो हिसा जाने-अनजाने मे की है, उस हिसा रूपी दड का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूॅ, (निदामि) आत्मसाक्षी से निन्दा करता हू, (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हू। (अप्पाण) हिसा दड सेवन करने वाले पापात्मा को (वोसिरामि) त्यागता हूॅ।

पढमे भंते ! महव्वए पाणाएवायाओ वेरमणं, सव्व भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि। से सुहुमं-वा, वायरं-वा, तसं-वा, थावरं-वा, नेव सयं पाणे अइवाइज्जा, नेव अन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं।।1।।

अन्वयार्थ– (भते) हे पूज्य– हे भगवन् ! (पढमे) प्रथम (महव्वए) महाव्रत मे (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेरमण) 'विरमण' निवर्तन होना है– अत (भते) हे भगवन् मै (सव्व) सब प्रकार की (पाणाइवाय) प्राणातिपात रूप हिसा का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू (से) छहो काया के जीवो (सुहुम) सूक्ष्म (वा) अथवा (वायर) वादर (तस) त्रस (वा) अथवा (थावर) स्थावर प्राणियो के (पाणे) प्राणो को (सय) स्वय (नेव अइवाइज्जा) हनन नहीं करूगा और (नेव) न (अन्नेहि)

दूसरो से (पाणे) प्राणियो के प्राणो का (अइवायाविज्जा) हनन कराऊगा, (पाणे) प्राणियो के प्राणो का (अइवायते) हनन करने वाले (अन्नेऽवि) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी नही जानूगा, (जावज्जीवाए) जीवनपर्यन्त (तिविह) तीन करण से करना, कराना, अनुमोदना से (तिविहेण) तीन योग से अर्थात् (मणेण) मन से (वायाए) वचन से (काएण) काया से (न करेमि) न करूगा, (न कारवेमि) न कराऊगा, (करतपि) करते हुए (अन्ने) दूसरे को (न समणुजाणामि) भला भी नही समझूगा। (भते) हे भगवन् ! मै (तस्स) सभी पूर्वजन्मो से लेकर आज तक के ज्ञात-अज्ञात मे किए समस्त हिसारूपी पाप से (पडिक्कमामि) निवृत्त होता हू, (निदामि) उस पाप की निन्दा करता हू (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हू (अप्पाण) हिसा रूप दड सेवन करने वाले आत्मा को (वोसिरामि) त्यागता हू। (भते) हे भगवन् ! मै (सव्वाओ) सब (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेरमण) निवृत्ति रूप (पढमे) प्रथम (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू, अर्थात् इसके पालन मे तत्पर होता हूँ।

भावार्थ– शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मै प्रथम महाव्रत के विषय मे सावधान होता हू और पूर्वकाल मे किए हुए हिसा सम्बन्धी पाप से निवृत्त होता हू।

अहावरे दुच्चे भते ! महव्वए मुसा वायाओ वेरमणं सव्वं भते ! मुसावाय पच्चक्खामि से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, नेव सयं मुसं वइज्जा, नेवऽन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। दुच्चे भते ! महव्वए उवट्ठि ओमि सव्वाओ मुसा वायाओ वेरमण।।

अन्वयार्थ– (भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (दुच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत मे (मुसावायाओ) मृषावाद– असत्य से (वेरमण) निवर्तन होना है। अत (भते) हे भगवन् ! मै (सव्व) सब प्रकार के (मुसावाय) मृषावाद का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू। (से) वह इस प्रकार (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा (लोहा वा) लोभ से (भया वा) भय से अथवा (हासा वा) हसी से (सय) मै स्वय (मुस) असत्य (नेव वइज्जा) नही बोलूगा, (नेवऽन्नेहि) न दूसरो से (मुस) असत्य (वायाविज्जा) बोलाऊगा, (मुस) असत्य (वयतेऽवि) बोलते हुए (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझूगा (जावज्जीवाए से वोसिरामि तक के शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।) (भते) हे भगवन् ! मै (सव्वाओ) सपूर्ण (मुसावायाओ) मृषावाद के (वेरमण) त्याग रूप (दुच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू, अर्थात् इसके पालन मे तत्पर होता हू।

भावार्थ– शिष्य दूसरे महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! अन्निादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा, नयरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा, नेवऽन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा, अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं।।

अन्वयार्थ– (भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत मे (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमण) निवर्तन होना है– अत (भते) हे भगवन् ! मैं (सव्व) सब प्रकार के

(अदिन्नादाण) अदत्तादान– चोरी का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हू (से) वह इस प्रकार कि (गामे) ग्राम मे (वा) अथवा (नयरे वा) नगर मे अथवा (रण्णे वा) जगल मे (अप्प वा) अल्प अथवा (बहु वा) बहुत, (अणु) सूक्ष्म (वा) अथवा (थूल वा) स्थूल, (चित्तमत वा) सचेतन अथवा (अचित्तमत वा) अचेतन आदि किसी भी (अदिन्न) बिना दिये हुए पदार्थ को (सय) मै स्वय (नेव गिण्हिज्जा) ग्रहण नही करूगा, (नेवऽन्नेहि) न दूसरो से (अदिन्न) बिना दिये हुए पदार्थ को (गिण्हाविज्जा) ग्रहण कराऊगा और (अदिन्न) बिना दिये हुए पदार्थ को (गिण्हते वि) ग्रहण करते हुए (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझूगा। 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तब शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। (भते) हे भगवन् ! मै (अदिन्नादाओ) अदत्तादान से (वेरमण) निवृत्तिरूप (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू, अर्थात् इसके पालन मे तत्पर होता हू।

अहावरे चउत्थे भते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणिय वा, नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवऽन्नेहि मेहुण सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंतेऽवि अन्ने न समणु जाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करंतमि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। चउत्थे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं।।

अन्वयार्थ–(भते) हे भगवान् ! (अहावरे) इसके बाद (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत मे (मेहुणाओ) मैथुन से (वेरमण) निवर्तन होना है। अत (भते) हे भगवान् ! मै (सव्व) सब प्रकार के (मेहुण) मैथुन का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हूँ (से) वह इस प्रकार कि (दिव्व) देव सम्बन्धी (वा) अथवा (माणुस वा) मनुष्य सम्बन्धी अथवा (तिरिक्खजोणिय वा) तिर्यञ्च सम्बन्धी– इन तीनो जातियो मे किसी

के भी साथ (मेहुण) मैथुन को (सय) मै स्वय (नेव सेविज्जा) सेवन नही करूगा (नेवऽन्नेहि) न दूसरो से (मेहुण) मैथुन (सेवाविज्जा) सेवन कराऊगा और (मेहुण) मैथुन (सेवतेऽवि) सेवन करने वाले (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझूगा। 'जावज्जीवाए। से 'वोसिरामि') तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् हे। (भते) हे भगवन् ! मै (सव्वाओ) सब प्रकार के (मेहुणाओ) मैथुन से (वेरमण) निवृत्तिरूप (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हूँ, अर्थात् इसके पालन मे तत्पर होता हूँ।

अहावरे पचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं, सव्व भंते ! परिग्गह पच्चक्खामि से अप्पं वा, बहु वा, अणु वा, थूल वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमतं वा, नेव सय परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवऽन्नेहि परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण।।

अन्वयार्थ – (भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके वाद (पचमे) पाचवे (महव्वए) महाव्रत मे (परिग्गहाओ) परिग्रह से (वेरमण) निवर्तन होना है। अत (भते) हे भगवान् ! मैं (सव्व) सब प्रकार के (परिग्गह) परिग्रह को (पच्चक्खामि) त्यागता हूँ (से) वह इस प्रकार है (अप्प वा) अल्प अथवा (बहु वा) बहुत, (अणु वा) सूक्ष्म अथवा (थूल वा) स्थूल, (चित्तमत वा) सचेतन (अचित्तमत वा) अथवा अचेतन (परिग्गह) परिग्रह को (सय) मै स्वय (नेव परिगिण्हिज्जा) ग्रहण नहीं करूगा (नेवऽन्नेहि) न दूसरो से (परिग्गह) परिग्रह को (परिगिण्हाविज्जा) ग्रहण कराऊगा (परिग्गह) परिग्रह को (परिगिण्हतेऽवि) ग्रहण करने वाले (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझगा 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् हे। (भते) हे भगवन् ! मैं (सव्वाओ) सब प्रकार के (परिग्गहाओ) परिग्रह से

(वेरमण) निवर्तन रूप (पचमे) पाचवे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हूँ, अर्थात् इसके पालन मे तत्पर होता हूँ।

भावार्थ– शिष्य सब प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पाचवे महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे छट्ठे भते ! वए राइभोयणाओ वेरमण, सव्व भते ! राइ भोयण पच्चक्खामि से असण वा पाण वा खाइमं वा साइम वा, नेव सय राइं भुजिज्जा, नेवन्नेहि राइ भुजाविज्जा, राइ भुंजतेऽवि अन्ने न समणु जाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमण। इच्चेयाइ पंच महव्वयाइ राइ-भोयण वेरमणं छट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ता ण विहरामि।।

अन्वयार्थ– (भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (छट्ठे) छठे (वए) व्रत मे (राइभोयणाओ) रात्रि भोजन का (वेरमण) त्याग होता है। अत (भते) हे भगवन् ! मै (सव्व) सब प्रकार के (राइभोयण) रात्रि भोजन का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू। (से) वह इस प्रकार है कि (असण वा) अन्नादि अथवा (पाण वा) पानी आदि अथवा (खाइम वा) खाद्य, मेवा और अचित्त फलादि अथवा (साइम वा) स्वाद्य– लोग, इलायची आदि (सय) मै स्वय (राइ) रात्रि मे (नेव) नहीं (भुजिज्जा 'भुजेज्जा') खाऊगा, (नेवन्नेहिं) न दूसरो को (राइ) रात्रि मे (भुजाविज्जा) खिलाऊगा और (राइ) रात्रि मे (भुजाविज्जा) खिलाऊगा ओर (राइ) रात्रि मे (भुजतेऽवि) भोजन करने वाले (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझूगा। 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। (भते) हे भगवन् ! मै (सव्वाओ) सब प्रकार के (राइभोयणाओ) रात्रि भोजन से (वेरमण) निवृत्ति रूप (छट्ठे) छठे (वए) व्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू, अर्थात् इसके पालन मे तत्पर होता हू।

(इच्चेयाइ) ये पहले कहे हुए (पच महव्वयाइ) पांच महाव्रतो को और (राइभोयण-वेरमण-छट्ठाइ) रात्रि-भोजन विरमण रूप छठे व्रत को (अत्तहियट्ठयाए-यट्ठियाए) आत्मकल्याण के लिए (उवसपज्जित्ताण) स्वीकार करके मै (विहरामि) सयम मे विचरता हू।

भावार्थ– अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिसा आदि पाच महाव्रतो को और छठे रात्रिभोजन–त्याग रूप व्रत को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है।

छ काय के जीवो की रक्षा के बिना चारित्र धर्म का पालन नहीं हो सकता। अत छ–काय जीवो की रक्षा के विषय मे सूत्रकार कहते है–

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से पुढवि वा, भित्तिं वा, सिलं वा, लेलुं वा, ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थ, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सिलागाए वा, सिलाग-हत्थेण वा, न आलिहिज्जा, न विलिहिज्जा, न घट्टिजा, न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा। अन्नं आलिहंतं वा, विलिहंत वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

अन्वयार्थ– (सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे) संयमी, पाप से विरक्त, कर्मो की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पापकर्मो के बन्ध का प्रत्याख्यान करने वाला (से) वह पूर्वोक्त महाव्रतो को धारण करने वाला (भिक्खू) साधु (वा) अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिया वा) दिन मे अथवा (राओ वा) रात्रि में (एगओ वा) अकेला अथवा (परिसागओ वा) साधु–समूह मे (सुत्ते वा) सोते हुए

(जागरमाणे वा) अथवा जागते हुए (से) इस प्रकार (पुढवि वा) पृथ्वी को अथवा (भित्ति वा) दीवार को (सिल वा) शिला को अथवा (लेलु वा) ढेले को (ससरक्ख वा काय) सचित्त रजसहित शरीर को अथवा (ससरक्ख वा वत्थ) सचित्त रजसहित वस्त्रो को (हत्थेण वा) हाथ से अथवा (पाएण वा) पेर से (कट्ठेण वा) लकडी से अथवा (किलिचेण वा) दडे से (अगुलियाए वा) अगुलि से अथवा (सिलागाए वा) लोहे की छड से अथवा (सिलागहत्थेण वा) लोहे की छडियो के समूह से (न आलिहिज्जा) सचित्त पृथ्वी पर लिखे नही (न विलिविज्जा) विशेष लिखे नही (न घट्टिज्जा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर गेरे नही (न भिदिज्जा) भेदन न करे (अन्न) दूसरे से (न आलिहाबिज्जा) लिखावे नही (न विलिहाविज्जा) विशेष औरो से लिखावे नही (न घट्टाविज्जा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरावे नही (न भिदाविज्जा) भेदन न करावे (आलिहत वा) लिखने वाले (विलिहत वा) विशेष लिखने वाले (घट्टत वा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले (भिदत वा) भेदन करने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे। शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मै (जावज्जीवाए) जीवनपर्यन्त (तिविह) तीन करण से और (तिविहेण) तीन योग से (मणेण) मन से (वायाए) वचन से (काएण) काया से (न करेमि) न करूगा (न कारवेमि) न कराऊगा (करतपि) करते हुए (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणामि) भला भी न समझूगा। (भते) हे भगवन् ! मै (तस्स) उस पाप से अर्थात् सचित्त पृथ्वीजन्य पाप से (पडिक्कमामि) पृथक् होता हू (निदामि) आत्मसाक्षी से निन्दा करता हू (गरिहामि) गुरुसाक्षी से गर्हा करता हू (अप्पाण) ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को (वोसिरामि) हटाता हू।

भावार्थ– इस सूत्र मे पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है। अब आगे के सूत्र मे अप्काय की यतना का वर्णन किया जायगा।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से उदगं वा, ओसं वा, हिमं वा, महिय वा, करग वा, हरिलणुग वा, सुद्धोदग वा, उदउल्ल वा काय, उदउल्लं वा वत्थ, ससिणिद्ध वा काय, ससिणिद्ध वा वत्थ, न आमुसिज्जा, न संफुसिज्जा, न आवीलिज्जा, न पवीलिज्जा, न अक्खोडिज्जा, न पवखोडिज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा अन्नं न आमुसाविज्जा, न सफुसाविज्जा, न आवीलाविज्जा, न पवीलाविज्जा, न अक्खोडाविज्जा, न पक्खोडाविज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्न आमुसंतं वा, संफुसंतं वा, आवीलंतं वा, पवीलतं वा, अक्खोडतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावतं वा, पयावंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

अन्वयार्थ– "से भिक्खु वा" से "जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (उदग वा) जल को (ओस वा) ओस को (हिम वा) बर्फ को (महिय वा) धूवर के पानी को (करग वा) ओले के पानी को (हरितणुग वा) हरियाली पर पडे हुए जल–बिन्दुओ को (सुद्धोदग वा) आकाश से गिरे हुए जल को (उदउल्ल वा काय) जल से भीगे हुए शरीर को (उदउल्ल वा वत्थ) जल से भीगे हुए वस्त्र को (ससिणिद्ध वा काय) कुछ–कुछ भीगे हुए शरीर को (ससिणिद्ध वा वत्थ) कुछ–कुछ भीगे हुए वस्त्र को (न आमुसिज्जा) जरा भी स्पर्श न करे (न सफुसिज्जा) अधिक स्पर्श न करे (न आवीलिज्जा) एक बार न दबावे निचोडे (न पवीलिज्जा बार–बार न दबावे निचोडे (न अक्कखोडिज्जा) न झाडे (न पक्खोडिज्जा) बार–बार न झाडे (न आयाविज्जा) न सुखावे (न

पयाविज्जा) बार–बार न सुखावे (अन्न) दूसरे से (न आमुसाविज्जा) जरा भी स्पर्श न करावे (न सफुसाविज्जा) बार–बार स्पर्श न करावे (न आवीलाविज्जा) न निचोडवावे (न पवीलाविज्जा) बार–बार न निचोडवावे (न अक्खोडाविज्जा) झडकावे नही (न पक्खोडाविज्जा) बार-बार झडकावे नही (न आयाविज्जा) न सुखवावे (न पयाविज्जा) बार-बार न सुखवावे तथा (आमुसत वा) जरा भी स्पर्श करने वाले (सफुसत वा) बार-बार स्पर्श करने वाले (आवीलत वा) दबाने वाले-निचोडने वाले (पवीलत वा) बार-बार दबाने वाले-निचोडने वाले (अक्खोडत वा) झडकाने वाले (पक्खोडत वा) बार–बार झडकाने वाले (आयावत वा) सुखाने वाले (पयावत वा) बार-बार सुखाने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला न समझे। 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तक का पूर्ववत् अर्थ है।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, सजयविरयपडिहयपच्चक्खाय-पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से अगणि वा, इगालं वा, मुम्मुरं वा, अच्चि वा, जालं वा, अलायं वा, सुद्धागणि वा, उक्क वा, न उंजिज्जा, न घट्टिज्जा, न भिदिज्जा, न उंज्जालिज्जा, न पज्जालिज्जा, न लिव्वाविज्जा, अन्न न उंजाविज्जा, घट्टाविज्जा, न भिदाविज्जा, न उज्जालाविज्जा, न पज्जालाविज्जा, न निव्वाविज्जा, अन्नं उजतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंत, वा, उज्जालत वा, पज्जालंतं वा, निव्वावंत वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए, तिविह तिविहेण मणेणं वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि।।

अन्वयार्थ– "से भिक्खू वा" से "जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (अगणि वा) अग्नि को
वा) अगारे को (मुम्मुर वा) चिनगारी, बकरी आदि के

अग्नि को (अच्चि वा) दीपक की शिखा की अग्नि को (जाल वा) अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को (अलाय वा) सिलगता हुआ कडा या काष्ठ की अग्नि को (सुद्धागणि वा) काष्ठादिरहित शुद्ध अग्नि को (उक्क वा) उल्कापात रूप अग्नि को (न उजिज्जा) ईधन डालकर न बढावे (न घट्टिटज्जा) सघट्टा न करे (न भिदिज्जा) छिन्न–भिन्न न करे (न उज्जालिज्जा) जरा भी न जलावे (न पज्जालिज्जा) प्रज्वलित न करे (न निव्वाविज्जा) न बुझावे (अन्न) दूसरे से (न उजाविज्जा) ईधन डालकर न बढवावे (न घट्टाविज्जा) सघट्टा न करवावे (न भिदाविज्जा) छिन्न–भिन्न न करवावे (न उज्जालाविज्जा) न जलवावे (पज्जालाविज्जा) न प्रज्वलित करवावे (न निव्वाविज्जा) न बुझवावे तथा (उज्जत वा) ईधन डालकर बढाने वाले (घट्टत वा) सघट्टा करने वाले (भिंदत वा) छिन्न-भिन्न करने वाले (उज्जालत वा) जलाने वाले (पज्जालत वा) प्रज्वलित करने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तक शव्दो का अर्थ पूर्ववत् है। अव वायुकाय की यतना के विषय मे वर्णन किया जाता है–

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभंगेण वा, साहाए वा, साहाभगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकन्नेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा काय, वाहिरं वा वि पुग्गलं न फुमिज्जा, न वीएज्जा, अन्नं न फुमाविज्जा, न वीआविज्जा, अन्नं फुमंत वा, वीअंतं वा, न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।।

अन्वयार्थ– "से भिक्खू वा" से "जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (सिएण वा) चामर से (विहुयणेण वा) पखे से (तलियटेण वा) ताड वृक्ष के पखे से (पत्तेण वा) पत्तो से (पत्तभगेण वा) पत्तो के टुकडो से (साहाए वा) शाखा से, (साहाभगेण वा) शाखा के टुकडो से (पिहुणेण वा) मोर के पखो से (पिहुणहत्थेण वा) मोरपिच्छी से (चेलेण वा) वस्त्र से (चेलकन्नेण वा) कपडे के पल्ले से (हत्थेण वा) हाथ से (मुहेण वा) मुख से (अप्पणो) अपने (काय) शरीर को (वा) अथवा (बाहिर वा वि पुग्गल) बाहरी पुद्गलो को, किसी भी वस्तु को (न फुमिज्जा) फूक न मारे, फूक मारकर हटावे, उठावे नही (न वीएज्जा) पखे आदि से हवा न करे, (अन्न) दूसरे से (न फुमाविज्जा) फूक न लगवावे (न वीआविज्जा) पखे आदि से हवा न करावे (फुमत वा) फूक देने वाले (वीअत वा) हवा करने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। अब वनस्पतिकाय की यतना का वर्णन किया जाता है–

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से बीएसु वा, बीयपइट्ठेसु वा, रूढेसु वा, रूढपइट्ठेसु वा, जाएसु वा, जायपइट्ठेसु वा, हरिएसु वा, हरियपइट्ठेसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइट्ठेसु वा, सचित्तेसु वा, सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा, न गच्छेज्जा, न चिट्ठेज्जा, न निसीइज्जा, न तुअट्टिज्जा, अन्न न गच्छाविज्जा, न चिट्ठाविज्जा, न निसीआविज्जा, न तुअट्टाविज्जा, अन्न गच्छंतं वा, चिट्ठतं वा, निसीअत वा, तुअट्टत वा, न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।।

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा" से "जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (बीएसु वा) बीजो पर (बीयपइट्ठेसु वा) बीजो पर रखे हुए शयन–आसन आदि पर (रूढेसु वा) बीज उगकर जो अकुरित हो उन पर (रूढपइट्ठेसु वा) अकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर (जाएसु वा) पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर (जायपइट्ठेसु वा) पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर (हरिएसु वा) हरी दूब आदि पर (हरियपइट्ठेसु वा) हरी दूब आदि पर रखे हुए आसन आदि पर (छिन्नेसु वा) वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओ पर (छिन्नपइट्ठेसु वा) वृक्ष आदि की कटी हुई शाखाओ पर रखे हुए आसनादि पर (सचित्तेसु वा) ऐसी वनस्पति जिस पर अण्डा आदि हो (सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा) घुन लगे हुए काठ पर (न गच्छेज्जा) न चले (न चिट्ठेज्जा) खडा न होवे न (निसीइज्जा) न बैठे (न तुअट्ठिज्जा) न सोवे (अन्न) दूसरे को (न गच्छाविज्जा) न चलावे (न चिट्ठाविज्जा) न खडा करे (न निसीआविज्जा) न बैठावे (न तुअट्टाविज्जा) न सुलावे (गच्छत वा) चलते हुए (चिट्ठत वा) खडे हुए (निसीअत वा) बैठते हुए (तुअट्टत वा) सोते हुए (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न जाने। 'जावज्जीवाए' से 'वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है–

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय–पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से कीडं वा, पयग वा, कुंथुं वा, पिवीलिय वा, हत्थसि वा, पायंसि वा, बाहुंसि वा, ऊरुंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पांयपुच्छणंसि वा, रयहरणंसि वा, गोच्छगंसि वा, उंडगंसि

वा, दंडगंसि वा, पीढगसि वा, फलगसि वा, सेज्जसि वा, सथारगसि वा, अन्नयरसि वा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ सजयामेव पडिलेहिय-पडिलेहिय पमज्जिय-पमज्जिय एगत-मवणिज्जा नो ण सघायमावज्जेज्जा।।

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा' से 'जागरमाणे' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (कीड वा) कीडे-मकोडे को (पयग वा) पतगे को (कुथु वा) कुथवा को (पिवीलिय वा) पिपीलिका- चींटी को (हत्थसि वा) हाथ पर (पायसि वा) पैर पर (बाहुसि वा) भुजा पर (ऊरुसि वा-ऊरसि वा) जाघ पर (उदरसि वा) पेट पर (सीससि वा) सिर पर (वत्थसि वा) वस्त्र पर (पडिग्गहसि वा) पात्र पर (कबलसि वा) कम्बल पर (पायपुच्छणसि वा) पैर पोछने के उपकरण विशेष पर (रयहरणसि वा) रजोहरण पर (गोच्छगसि वा-गुच्छगसि वा) पूजनी पर या पात्रो को पोछने के वस्त्र पर (उडगसि वा) स्थण्डिल पात्र पर (दडगसि वा) दडे पर (पीढगसि वा) चौकी पर (फलगसि वा) पाटे पर (सेज्जसि वा) शय्या पर (सथारगसि वा) घास आदि के सस्तारक पर (वा) अथवा (तहप्पगार) इसी प्रकार के (अन्नयरसि वा) किसी दूसरे (उवगरणजाए) उपकरण पर पडे हुए कीडे आदि जीव को (तओ) उस स्थान से अर्थात् हाथ–पैर आदि पर से (सजयामेव) यतनापूर्वक (पडिलेहिय-पडिलेहिय) बार-बार अच्छी तरह से प्रतिलेखना करके (पमज्जिय–पमज्जिय) बार-बार सम्यक् प्रकार से पूजकर (एगत) एकान्त स्थान मे (अवणिज्जा) रख दे किन्तु उन जीवो को (नो ण सघायमावज्जेज्जा) पीडा पहुचे इस तरह से इकट्ठा करके न रखे।

अजय चरमाणो अ, पाणभूयाइ हिसइ।
बधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फल।।1।।
अजय चिट्ठमाणो अ, पाणभूयाइ हिसइ।
बंधइ पावयं कम्म, तं से होइ कडुयं फल।।2।।

अजयं आसमाणो अ, पाणभूयाइं हिंसइ।
बधइ पावयं कम्म, तं से होइ कडुयं फलं।।3।।
अजयं सयमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल।।4।।
अजयं भुंजमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फलं।।5।।
अजय भासमाणो अ, पाणभूयाइं हिसइ।
बधइ पावयं कम्मं, त से होइ कडुयं फल।।6।।

अन्वयार्थ– (अजय) अयतनापूर्वक (चरमाणो) चलता हुआ (चिट्ठमाणो) खडा होता हुआ (आसमाणो) बैठता हुआ (सयमाणो) सोता हुआ (भुजमाणो) भोजन करता हुआ और (भासमाणो) बोलता हुआ व्यक्ति (पाणभूयाइ) त्रस स्थावर जीवो की (हिसइ) हिसा करता है (अ) जिससे (पावय) पाप (कम्म) कर्म का (बधइ) बन्ध होता है (त) वह पाप कर्म (से) उस प्राणी के लिए (कडुयं) कटुक (फल) फलदायी (होइ) होता है।।1–6।।

भावार्थ– इन छ गाथाओ मे अयतनापूर्वक चलने, खडा रहने, बैठने, सोने आदि का कडुआ फल बतलाया गया है जो स्वय उसी आत्मा को भोगना पडता है।

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कह सए।
कहं भुजंतो भासतो, पावकम्मं न बंधइ।।7।।

अन्वयार्थ– अब शिष्य प्रश्न करता है कि– हे भगवन्! यदि ऐसा हे तो मुनि (कह) कैसे (चरे) चले (कह) कैसे (चिट्ठे) खडा रहे (कह) कैसे (आसे) बैठे (कह) कैसे (सए) सोवे (कह) कैसे (भुजतो) भोजन करता हुआ और (कह) कैसे (भासतो) बोलता हुआ (पाव) पाप (कम्म) कर्म (न) नहीं (बधइ) बाधता हे।।7।।

जय चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जयं भुजतो भासंतो, पाव-कम्म न बधइ।।8।।

अन्वयार्थ– गुरु उत्तर देते है कि (जय) यतनापूर्वक (चरे) चले (जय) यतनापूर्वक (चिट्ठे) खडा रहे (जय) यतनापूर्वक (आसे) बैठे (जय) यतनापूर्वक (सए) सोवे (जय) यतनापूर्वक (भुजतो) भोजन करता हुआ और (जय) यतनापूर्वक (भासतो) बोलता हुआ (पाव) पाप (कम्म) कर्म (न) नही (बधइ) बाधता है।।8।।

सव्व भूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दतस्स, पावकम्मं न बधइ।।9।।

अन्यवार्थ– (सव्वभूयप्पभूयस्स) ससार के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझने वाले (सम्म) सम्यक् प्रकार से (भूयाइ) सब जीवो को (पासओ) देखने वाले (पिहियासवस्स) आश्रवो को रोकने वाले और (दतस्स) इन्द्रियो का दमन करने वाले के (पाव) पाप (कम्म) कर्म (न) नही (बधइ) बधता है।।9।।

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय पावगं।।10।।

अन्वयार्थ– (पढम) पहले (नाण) ज्ञान है (तओ) उसके पश्चात् (दया) दया है (एव) इस प्रकार (सव्व सजए) सब साधु (चिट्ठइ) आचरण करते है। (अन्नाणी) सम्यग् ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष (कि) क्या (काही) करेगा और (किवा) कैसे (सेय-छेय पावग) कल्याण और पाप के स्वरूप को (नाही) जानेगा।10।।

भावार्थ– सबसे पहिला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया का है। ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी, जिसे साध्य–साधन का भी ज्ञान नहीं है वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है ?

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे।।11।।

अन्वयार्थ– (सोच्चा) सुनकर ही (कल्लाण) कल्याण को (जाणइ) जानता है (सोच्चा) सुनकर ही (पावग) पाप को (जाणइ) जानता है ओर (उभयपि) दोनो को–कल्याण और पाप को भी (सोच्चा) सुनकर ही (जाणइ) जानता है– अत (ज) जो (सेय) आत्मा के लिये श्रेयस्कर हो (त) उसका (समायरे) आचरण करे।।11।।

भावार्थ– हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता हे। इसलिए इनमे से जो श्रेष्ठ हो उसी मे प्रवृत्ति करनी चाहिए।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ।
जीवा जीवे अयाणतो, कहं सो नाहिइ संजमं।।12।।

अन्वयार्थ– (जो) जो (जीवे वि) जीवो को भी (न) नहीं (याणेइ) जानता और (अजीवे वि) अजीवो को भी (न) नहीं (याणेइ) जानता। (जीवा–जीवे) इस प्रकार जीवो और अजीवो को (अयाणतो) नही जानने वाला (सो) वह साधक (सजम) सयम को (कह) केसे (नाहिइ) जानेगा अर्थात् नहीं जान सकता।। 12।।

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहिइ संजमं।।13।।

अन्वयार्थ– (जो) जो (जीवे वि) जीवो को भी (वियाणेइ-वियाणइ) जानता है तथा (अजीवे वि) अजीवो को भी (वियाणेइ) जानता है। इस प्रकार (जीवाजीवे) जीवो और अजीवो को (वियाणतो) जानने वाला (सो) वह साधक (हु) निश्चय ही (सजम) सयम के स्वरूप को (नाहिइ) जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य, दोवि ए ए वियाणइ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।।14।।

अन्वयार्थ— (जया) जब आत्मा (जीवमजीवे) जीव और अजीव (ए ए) इन दोनो को (वियाणइ) जान लेता है (तया) तब (सव्वजीवाण) सब जीवो की (बहुविह) बहुत भेदो वाली (गइ) नरक, तिर्यच आदि नानाविध गति को भी (जाणइ) जान लेता है।।14।।

भावार्थ— इस गाथा मे तथा आगे की गाथाओ मे ज्ञानप्राप्ति से लेकर मोक्षप्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है.

जया गइ बहुविह, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्ण च पावं च, बंध मुक्ख च जाणइ।।15।।

अन्वयार्थ— (जया) जब आत्मा (सव्वजीवाण) सब जीवो की (बहुविह) बहुत भेदो वाली (गइ) नरक, तिर्यच आदि नानाविध गति को (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब (पुण्ण) पुण्य (च) और (पाव) पाप को (च) तथा (बध) बध (च) और (मुक्ख) मोक्ष को भी (जाणइ) जान लेता है।।15।।

जया पुण्णं च पावं च, बंध मुक्ख च जाणइ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे अ माणुसे।।16।।

अन्वयार्थ— (जया) जब (पुण्ण) पुण्य (च) और (पाव) पाप को (च) तथा (बध) बन्ध (च) और (मुक्ख) मोक्ष को भी (जाणइ) जान लेता है (तया) तब (जे दिव्वे) जो देव सम्बन्धी (अ) और (जे माणुसे) जो मनुष्य सम्बन्धी (भोए) कामभोग है उनसे (निव्विदए) निर्वेद को प्राप्त होता है अर्थात् उन कामभोगो से विरक्त हो जाता है।।16।।

जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे अ माणुसे।
तया चयइ संजोग, सब्भितर बाहिरं।।17।।

अन्वयार्थ— (जया) जब (जे दिव्वे) जो देव (अ) और (जे माणुसे) मनुष्य सम्बन्धी (भोए) काम—भोग है (निव्विदए) उनसे विरक्त हो जाता है (तया) तब (सब्भितरबाहिर) राग—द्वेष आभ्यन्तर एव माता-पिता तथा सपत्ति रूप बाह्य (सजोग) सयोग को (चयइ) छोड देता है।

जया चयइ संजोग, सब्भितर वाहिर।
तया मुण्डे भवित्ता णं, पव्वइए अणगारियं।।18।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (सब्भितरवाहिर) आभ्यतर ओर वाह्य (सजोग) सयोग को (चयइ) छोड देता हे (तया) तव (मुण्डे) द्रव्य और भाव से मुण्डित (भवित्ताण) होकर (अणगारिय) अणगार वृत्ति को (पव्वइए) ग्रहण करता है।।18।।

जया मुण्डे भवित्ता णं, पव्वइए अणगारिय।
तया सवरमुक्किट्ठं, धम्म फासे अणुत्तरं।।19।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (मुण्डे) द्रव्य ओर भाव से मुण्डित (भवित्ता ण) होकर (अणगारिय) अणगार वृत्ति को (पव्वइ) ग्रहण करता है (तया) तब (उक्किट्ठ) उत्कृष्ट और (अणुत्तर) प्रधान-सर्वश्रेष्ठ (सवर धम्म) सवर-चारित्र धर्म को (फासे) स्पर्श करता है– अर्थात् प्राप्त करता है।।19।।

जया सवर मुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अवोहि कलुसं कडं।।20।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (उक्किट्ठ) उत्कृष्ट ओर (अणुत्तर) प्रधान (सवर धम्म) सवर धर्म को (फासे) प्राप्त करता हे (तया) तव (अबोहि कलुस कड) आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किए हुए (कम्मरय) कर्मरूपी रज को (धुणइ) झाड देता हे अर्थात् दूर कर देता है।।20।।

जया धुणइ कम्मरयं, अवोहि कलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।।21।।

अन्वयार्थ– (जया) अव (अवोहि कलुस कड) आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए (कम्मरय) कर्मरूपी रज को (धुणइ) झाड देता है (तया) तव (सव्वत्तग) सव पदार्थो को जानने

वाले (नाण) ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान (च) और (दसण) केवलदर्शन को (अभिगच्छइ) प्राप्त कर लेता है।।21।।

जया सव्वत्तग नाण, दसण चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली।।22।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (सव्वत्तग) सब पदार्थो को जानने वाले (नाण) ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान (च) और (दसण) केवलदर्शन को (अभिगच्छइ) प्राप्त कर लेता है (तया) तब (जिणो) राग-द्वेष का विजेता (केवली) केवलज्ञानी होकर (लोग) लोक (च) और (अलोग) अलोक के स्वरूप को भी (जाणइ) जान लेता है।।22।।

जया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुभित्ता, सेलेसि पडिवज्जइ।।23।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (जिणो) राग-द्वेष का विजेता (केवली) केवलज्ञानी होकर (लोग) लोक (च) और (अलोग) अलोक को (जाणइ) जान लेता है (तया) तब आत्मा (जोगे) मन–वचन–काया के योगो का (निरुभित्ता) निरोध करके (सेलेसि) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है।।23।।

जया जोगे निरुभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्म खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।।24।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (जोगे) मन–वचन–काया के योगो का (निरुभित्ता) निरोध करके (सेलेसि) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है (तया) तब आत्मा (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्म) समस्त कर्मो का (खवित्ताण) क्षय करके (सिद्धि) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है।।24।।

जया कम्म खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ।।25।।

अन्वयार्थ– (जया) जब (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्म) समस्त कर्मो का (खवित्ताण) क्षय करके (सिद्धि) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है (तया) तब आत्मा (लोगमत्थयत्थो) लोक के अग्रभाग पर स्थित (सासओ) शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) हो जाता है।।25।।

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगाम साइस्स।
उच्छोलणापहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स।।26।।

अन्वयार्थ– (सुहसायगस्स) सुख मे आसक्त रहने वाले (सायाउलगस्स) साता के लिए व्याकुल रहने वाले (निगाम साइस्स) अत्यन्त सोने वाले (उच्छोलणापहोयस्स) शरीर की विभूषा के लिए हाथ–पैर आदि धोने वाले (तारिसगस्स समणस्स) वैसे साधु को (सुगई) सुगति–मोक्ष मिलना (दुल्लहा) दुर्लभ है।।26।।

तवोगुण पहाणस्स, उज्जु मइ खंति संजम रयस्स।
परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स।।27।।

अन्वयार्थ– (तवोगुणपहाणस्स) तपोगुण की प्रधानता वाले (उज्जुमइ) सरल बुद्धि वाले (खतिसजमरयस्स) क्षमा और सयम मे रत (परीसहे) परीषहो को (जिणतस्स) जीतने वाले (तारिसगस्स) वैसे साधु को (सुगई) सुगति-मोक्ष मिलना (सुलहा) सुलभ है।।27।।

भावार्थ– तप–सयम मे अनुरक्त, सरल प्रकृति वाले तथा बाईस परीषहो को समभावपूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है।

पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।
जेंसि पिओ तवो संजमो अ, खंती अ बंभचेर च।।28।।

अन्वयार्थ– (जेसि) जिनको (तवो) तप (अ) और (सजमो) संयम (अ) तथा (खती) क्षमा (च) और (बभचेर) ब्रह्मचर्य (पिओ) प्रिय है, ऐसे साधक यदि (पच्छावि) अपनी पिछली अवस्था मे भी–

वृद्धावस्था मे भी (पयाया) चढते परिणामो से– उच्च भावो से सयम स्वीकार करते है तो (ते) वे (खिप्प) शीघ्र (अमरभवणाइ) स्वर्ग अथवा मोक्ष को (गच्छति) प्राप्त हो जाते है।।28।।

भावार्थ– पूर्ण वैराग्य के साथ थोडे समय तक पालन किया हुआ सयम भी सुगति देने वाला होता है।

इच्चेय छज्जीवणियं सम्मद्दिट्ठी सया जए।
दुल्लह लहित्तु सामण्ण, कम्मुणा न विराहिज्जासि।।29।। त्तिबेमि।

अन्वयार्थ– (इच्चेय) इस पूर्वोक्त स्वरूप वाले (छज्जीवणिय) छ जीव निकाय के विषय मे (सम्मादिट्ठी) सम्यग् दृष्टि (सया) सदा (जए) यतना करे तथा (दुल्लह) कठिनाई से प्राप्त होने वाले (सामण्ण) साधुपने को (लहित्तु) प्राप्त करके (कम्मुणा) मन, वचन, काया से (न विराहिज्जासि) सयम की विराधना न करे। (त्तिबेमि) श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते है कि जैसा मैने भगवान महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही कहा है।



'पिण्डैषणा' नामक पांचवें अध्ययन का पहला उद्देशा

इस अध्ययन मे मुनि के लिए भिक्षा की विधि बतलाई जाती है–

संपत्ते भिक्खकालम्मि, असंभंतो अमुच्छिओ।
इमेण कमजोगेण, भत्तपाण गवेसए।।1।।

अन्वयार्थ– (भिक्खकालम्मि) भिक्षा-गोचरी का समय (सपत्ते) होने पर साधु (असभतो) असम्भ्रात अर्थात् चित्त की व्याकुलता एव उद्वेग से रहित होकर (अमुच्छिओ) आहारादि मे मूर्च्छित न होता हुआ (इमेण) इस आगे बताई जाने वाली (कमजोगेण) विधि से (भत्तपाण) आहार–पानी की (गवेसए) गवेषणा करे।।1।।

भावार्थ– जिस गाव मे जो समय गोचरी का हो, उसी समय मुनि चचलता और गृद्धिभावरहित होकर भिक्षा के लिए जावे।

से गामे वा नगरे वा, गोयरग्गगओ मुणी।
चरे मदमणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा।।2।।

अन्वयार्थ– (गामे) गाव मे (वा) अथवा (नगरे) नगर मे (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (से) वह (मुणी) मुनि (अणुव्विग्गो) उद्वेगरहित (वा) और (अव्वक्खित्तेण) अव्याक्षिप्त अर्थात् शात (चेयसा) चित्त से (मद) ईर्यासमितिपूर्वक मन्द गति से (चरे) चले।।2।।

पुरओ जुग मायाए, पेहमाणो महि चरे।
वज्जंतो बीय हरियाइं, पाणे य दग मट्टिय।।3।।

अन्वयार्थ– (पुरओ) सामने (जुगमायाए) धूसर– चार हाथ प्रमाण (महि) पृथ्वी को (पेहमाणो) देखता हुआ मुनि (बीय हरियाइ) बीज और हरी वनस्पति (पाणे) बेइन्द्रियादिक प्राणी (य) और (दगमट्टिय) सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टी को (वज्जतो) वर्जता हुआ– बचाता हुआ (चरे) चले।।3।।

टिप्पणी– (जुगमायाए) धूसर अर्थात् बैलो के कन्धो पर रखा जाने वाला जुआ, जिसका परिमाण लगभग चार हाथ प्रमाण होता है। कही-कही 'साढे तीन हाथ प्रमाण' अथवा 'शरीर प्रमाण' इस प्रकार का पाठ भी आता है। सबका अर्थ लगभग समान ही है कि साढे तीन या चार हाथ प्रमाण भूमि सामने देख कर सयमी मुनि को चलना चाहिए।

ओवाय विसम खाणु, विज्जलं परिवज्जए।
संकमेण न गच्छिज्जा, विज्जमाणे परक्कमे।।4।।

अन्वयार्थ– (परक्कमे) यदि दूसरा अच्छा मार्ग (विज्जमाणे) विद्यमान हो तो साधु (ओवाय) जिस मार्ग मे गिर पडने की शका हो (विसम) जो मार्ग खड्डे आदि के कारण विषम– ऊबड–खाबड हो (खाणु) जो मार्ग काटे हुए धान्य के डठलो से युक्त हो और (विज्जल) जो मार्ग कीचडयुक्त हो– ऐसे मार्ग को (परिवज्जए) छोड देवे तथा (सकमेण) कीचड आदि के कारण उल्लघने के लिए जिस मार्ग मे ईट, काठ आदि रखे हुए हो, ऐसे मार्ग से भी मुनि (न) नहीं (गच्छिज्जा), जावे।।4।।

पवडते व से तत्थ, पक्खलंते व सजए।
हिंसेज्ज पाण भूयाइं, तसे अदुव थावरे।।5।।

अन्वयार्थ– उपरोक्त मार्ग से जाने मे हानि बतलाते है (से) उस मार्ग से जाता हुआ (सजए) साधु (व) यदि (तत्थ) वहा (पक्खलते)

फिसल जाय (व) अथवा (पवडते) खड्डे आदि मे गिर जाय तो वह (तसे) त्रस द्वीन्द्रियादिक (अदुव) अथवा (थावरे) स्थावर– एकेन्द्रियादिक (पाणभूयाइ) प्राण भूतो की (हिसेज्ज) हिसा कर देता है।।5।।

भावार्थ– साधु उपर्युक्त विषम मार्ग से गमन न करे क्योकि ऐसे मार्ग पर चलने से आत्मविराधना और सयम-विराधना होने की सभावना रहती है।

तम्हा तेण न गच्छिज्जा, संजए सुसमाहिए।
सइ अण्णेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे।।6।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (सुसमाहिए) सुसमाधिवत (सजए) साधु (सइ अण्णेण मग्गेण) यदि कोई दूसरा अच्छा मार्ग हो तो (तेण) उस विषम मार्ग से (न) नही (गच्छिज्जा) जावे। यदि कदाचित् दूसरा अच्छा मार्ग न हो तो उसी मार्ग से मुनि (जयमेव) यतनापूर्वक (परक्कमे) गमन करे।।6।।

इंगाल छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं।
ससरक्खेहिं पाएहि, संजओ तं न इक्कमे।।7।।

अन्वयार्थ– (सजओ) साधु (ससरक्खेहि) सचित्त रज से भरे हुए (पाएहि) पैरो से (त) उस (इगाल) कोयलो के ढेर को तथा (छारियरासि) राख के ढेर को (तुसरासि) तुषो- भूसे के ढेर को (च) और (गोमय) गोबर के ढेर को (न इक्कमे) न उल्लघे।।7।।

टिप्पणी- इन पर चलने से पैरो मे लगी हुई सचित्त रज रूपी पृथ्वीकाय की हिसा की सभावना रहती है। इसके लिए साधु उपरोक्त को वर्ज कर गमन करे।

न चरेज्ज वासे वासंते, महियाए वा पडंतिए।
महावाए व वायंते, तिरिच्छ संपाइमेसु वा।।8।।

अन्वयार्थ– (वासे वासते) वर्षा बरसती हो (वा) अथवा (महियाए) धूअर- कुहरा (पडतिए) गिरता हो (व) अथवा (महावाए वायते) महावायु- आधी चलती हो (वा) अथवा (तिरिच्छसपाइमेसु) पतगिया

आदि अनेक प्रकार के जीव इधर-उधर उड रहे हो तो ऐसे समय मे साधु (न चरेज्ज) गोचरी के लिये बाहर न जावे।।8।।

न चरेज्ज वेससामते, बभचेरवसाणुए।
बंभयारिस्स दतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया।।9।।

अन्वयार्थ– (बभचेरवसाणुए) ब्रह्मचर्य की रक्षा चाहने वाले साधु को (वेससामते) वेश्या के मोहल्ले मे (न चरेज्ज) गोचरी न जाना चाहिए क्योकि (तत्थ) वहा गोचरी जाने से (दतस्स) इन्द्रियो को दमन करने वाले (बभयारिस्स) ब्रह्मचारी साधु का (विसुत्तिया) चित्त चचल (हुज्जा- होज्जा) हो सकता है।।9।।

अणायणे चरतस्स, ससग्गीए अभिक्खणं।
हुज्ज वयाणं पीला, सामण्णम्मि य संसओ।।10।।

अन्वयार्थ– (अणायणे- अणाययणे) वेश्याओ के मोहल्ले मे अथवा इसी प्रकार के दूसरे अयोग्य स्थानो मे (चरंतस्स) गोचरी आदि के लिए जाने वाले साधु के (अभिक्खण) बार-बार (ससग्गीए) स्त्री आदि का ससर्ग होने के कारण (वयाण) महाव्रतो को (पीला) पीडा (हुज्ज) होती है अर्थात् महाव्रत दूषित होने की आशंका रहती है (च) और इतना ही नही किन्तु साधु को (सामण्णम्मि) साधुपने मे भी (ससओ) सन्देह हो जाता है अथवा दूसरे लोगो को उस साधु के चारित्र मे सन्देह हो जाता है।।10।।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण।
वज्जए वेससामत, मुणी एगतमस्सिए।।11।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) दुर्गति को बढाने वाले (एय) इन उपरोक्त (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर (एगतमस्सिए) एकात मोक्ष का अभिलाषी (मुणी) मुनि (वेससामत) वेश्याओ के मोहल्ले और इसी प्रकार के अयोग्य स्थानो को (वज्जए) छोड दे अर्थात् वहा न जावे।।11।।

भावार्थ– ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे उपर्युक्त स्थानो मे जाना साधु को मना किया है क्योकि ऐसे स्थानो मे जाने से साधु का मन चचल हो सकता है, जिससे उसका मन शुभ कार्यो मे न लगकर आर्त-रौद्र ध्यान करने लगता है। इसलिए साधु ऐसे ससर्ग को ही टाल दे।

साणं सूइअ गाविं, दित्तं गोणं हय गय।
संडिम्भं कलहं जुद्धं, दूरओ परिवज्जए।।12।।

अन्वयार्थ– मार्ग की यतना विशेष रूप से बतलाई जाती है (साण) जहा काटने वाला कुत्ता हो (सूइअ) नव-प्रसूता- थोडे काल की ब्याई हुई (गावि) गाय हो (दित्तं) मदोन्मत्त (गोण) गोधा- बैल हो (हय) मदोन्मत्त घोडा हो (गय) मदोन्मत्त हाथी हो और (सडिम्भ-सडिब्भ) जहा बच्चे खेल रहे हो तथा (कलह) जहा परस्पर गाली-गलोज, झगडा हो रहा हो अथवा (जुद्ध) शस्त्र आदि से युद्ध हो रहा हो ऐसे स्थानो को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वर्जे अर्थात् ऐसे स्थानो मे न जावे।।12।।

अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्ठे अणाउले।
इन्दियाइं जहाभागं, दमइत्ता मुणी चरे।।13।।

अन्वयार्थ– मार्ग मे किस प्रकार चलना चाहिए, इस विषय मे कहते है कि (मुणी) गोचरी के लिए घूमता हुआ साधु (अणुन्नए) द्रव्य से बहुत ऊपर की तरफ न देखता हुआ तथा भाव से जात्यादि के अभिमान से रहित (नावणए) द्रव्य से शरीर को बहुत न झुकाकर तथा भाव से दीनतारहित (अप्पहिट्ठे) हर्षित न होता हुआ (अणाउले) तथा व्याकुलतारहित (इदियाइ) इन्द्रियो का (जहाभाग) यथाक्रम से (दमइत्ता) दमन करता हुआ (चरे) चले।।13।।

दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावय सया।।14।।

अन्वयार्थ– (उच्चावय)' ऊच-नीच (कुल) कुल मे (गोयरे) गोचरी के लिए साधु (सया) हमेशा (दव-दवस्स) अति शीघ्रता से दडबड-दडबड दौडता हुआ (न) न (गच्छेज्जा) जावे (य) और (हसतो) हसता हुआ तथा (भासमाणो) बोलता हुआ भी (नाभिगच्छेज्जा) न जावे।।14।।

अलोअ थिग्गलं दार, सधि दगभवणाणि य।
चरंतो न विणिज्झाए, सकट्ठाण विवज्जए।।15।।

अन्वयार्थ– (चरतो) भिक्षा के लिए फिरता हुआ साधु (अलोअ) जाली झरोखे को (थिग्गल) दीवाल के छेद को (दार) द्वार को (सधि) भीत की साध को अर्थात् दीवार के कोने आदि अथवा चोरो द्वारा किए हुए भींत के छेद को (य) और (दगभवणाणि) पलेण्डा आदि के स्थान को (न विणिज्झाए) टकटकी लगाकर न देखे क्योकि ये सब (सकट्ठाणं) शका के स्थान है। इसलिए इन्हे (विवज्जए) विशेष रूप से त्याग दे।।15।।

भावार्थ– ऐसे शका के स्थानो को देखने से गृहस्थ को साधु के प्रति चोर–लम्पट आदि का सन्देह हो सकता है।

रण्णो गिहवईणं च, रहस्सारक्खियाण य।
संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए।।16।।

अन्वयार्थ– साधु (रण्णो) राजा के (गिहवईण) गृहपतियो के सेठो के (य) और (आरक्खियाण) नगर की रक्षा करने वाले कोटवाल आदि के (रहस्स) गुप्त बातचीत करने के स्थानो को (दूरओ) दूर ही से (परिवज्जए) त्याग देवे अर्थात् ऐसे स्थानो मे न जावे, क्योकि ऐसे (ठाण) स्थान (सकिलेसकर) सयम मे असमाधि उत्पन्न करने वाले है।।16।।

भावार्थ– राजा आदि के गुप्त बातचीत करने के स्थान की तरफ देखने से उनको साधु के प्रति क्रोध तथा अश्रद्धा आदि अनेक दोष उत्पन्न होने की सभावना रहती है।

पडिकुट्ठ कुल न पविसे, मामगं परिवज्जए।
अचियत्त कुल न पविसे, चियत्तं पविसे कुलं।।17।।

अन्वयार्थ– साधु (पडिकुट्ठ) शास्त्रनिषिद्ध (कुल) मे (न पविसे) गोचरी के लिए न जावे तथा (मामग) जिस घर का स्वामी यह कह दे कि मेरे घर मत आओ, ऐसे घर मे साधु (परिवज्जए) न जावे तथा (अचियत्त) प्रीतिरहित बदनाम (कुल) कुल मे (न पविसे) न जावे किन्तु (चियत्त) प्रतीति वाले (कुल) कुल मे (पविसे) जावे।।17।।

साणीपावारपिहियं, अप्पणा नावपंगुरे।
कवाडं नो पणुल्लिज्जा, उग्गहंसि अजाइआ।।18।।

अन्वयार्थ– (सि–से) घर के स्वामी की (उग्गह) अनुज्ञा (अजाइया) मागे बिना (साणीपावारपिहिय) सन आदि के बने हुए परदे आदि से ढके हुए घर को (अप्पणा) साधु स्वय (नावपगुरे) न खोले अर्थात् परदे को न हटावे तथा (कवाड) किवाड को भी (नो) न (पणुल्लिज्जा) खोले।।18।।

टिप्पणी– गृहस्थ की अनुज्ञा लेकर द्वार खोलने की शास्त्र मे अनुज्ञा है, किन्तु कुछ पूर्वाचार्यो ने अनुभव द्वारा चूले वाली साकल को खोलने मे अयतना देखी, इसी कारण से सयम–पालन मे सावधानी–स्वरूप साधु को चूले वाली किवाड खोलकर गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने का निषेध किया। गृहस्थ की अनुज्ञा लेकर यतनापूर्वक द्वार खोलने मे शास्त्र का निषेध नहीं है।

गोयरग्गपविट्ठो य, वच्चमुत्त न धारए।
ओगासं फासुअं नच्चा, अणुन्नविअ वोसिरे।।19।।

अन्वयार्थ– (गोयरग्गपविट्ठो) गोचरी के लिए गया हुआ साधु (वच्च) मल (य) और (मुत्त) मूत्र को (न धारए) न रोके अर्थात् मल–मूत्र की बाधा उपस्थित होने पर उनके वेग को न रोके किन्तु (फासुअ) प्रासुक जीवरहित (ओगास) जगह को (नच्चा) देखकर

(अणुन्नविअ) गृहस्थ की अनुज्ञा लेकर (वोसिरे) मल–मूत्र का त्याग करे।।19।।

भावार्थ– मल–मूत्र की शका से निवृत्त होकर ही साधु को गोचरी के लिए जाना चाहिए किन्तु यदि कदाचित् रास्ते मे आकस्मिक शका हो जाय तो निरवद्य स्थान देखकर एव उसके मालिक की अनुज्ञा लेकर वहा शका का निवारण करे।

णीय दुवार तमस, कुट्ठग परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडि लेहगा।।20।।

अन्वयार्थ– (णीयदुवार–णीय दुवार) जिस मकान का द्वार बहुत नीचा हो, ऐसे मकान को (तमस) प्रकाशरहित (कुट्ठग) कोठे को साधु (परिवज्जए) छोड दे– अर्थात् ऐसे मकान मे आहार–पानी के लिए न जावे (जत्थ) जहा (अचक्खुविसओ) आखो से भली प्रकार दिखाई न देने के कारण (पाणा) द्वीन्द्रियादिक प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) प्रतिलेखना नही हो सकती अतएव उनकी विराधना होने की सभावना रहती है।।20।।

जत्थ पुप्फाइ बीयाइ, विप्पइन्नाइं कोट्ठए।
अहुणोवलित्त उल्ल, दट्ठूणं परिवज्जए ।।21।।

अन्वयार्थ– (जत्थ) जिस (कोट्ठए–कुट्ठए) प्रकोष्ठ या कोठे मे (पुप्फाइ) सचित्त वनस्पति एव फूल और (बीयाइ) अनाज के दाने, बीज इत्यादि (विप्पइन्नाइ) बिखरे हुए हो उस मकान को तथा (अहुणोवलित्त) तत्काल के लीपे हुए (उल्ल) गीले मकान को (दट्ठूण) देखकर (परिवज्जए) छोड दे अर्थात् ऐसे स्थान मे साधु गोचरी न जावे।।21।।

एलग दारग साण, वच्छग वावि कोट्ठए।
उल्लंघिया न पविसे, विउहित्ताण व संजए।।22।।

अन्वयार्थ– (कोट्ठए- कुट्ठए) जिस कोठे के दरवाजे पर (एलग) भेड हो (दारग) बालक हो (साण) कुत्ता हो (वच्छग) बछडा हो (वावि) अथवा इस प्रकार के दूसरे अर्थात् बकरा, बकरी, पाडा, पाडी आदि हो तो उन्हे (उल्लघिया) उल्लघन करके व अथवा (विउहित्ताण) हटाकर (सजए) साधु (न पविसे) प्रवेश न करे।।22।।

असंसत्त पलोइज्जा, नाइदूरावलोयए।
उप्फुल्लं न विनिज्झाए, निअट्टिज्ज अयंपिरो।।23।।

अन्वयार्थ– गोचरी के लिए गया हुआ साधु (असंसत्त पलोइज्जा) किसी व्यक्ति या वस्तु की तरफ आसक्तिपूर्वक न देखे (नाइदूरावलोयए) घर के अन्दर दूर तक लम्बी दृष्टि डालकर भी न देखे तथा (उप्फुल्ल) आखे फाड-फाडकर, टकटकी लगाकर (न विनिज्झाए) नही देखे, यदि वहा भिक्षा न मिले तो (अयपिरो) कुछ भी न बोलता हुआ अर्थात् दीन वचन न बोलता हुआ तथा क्रोध से बडबडाहट नही करता हुआ (निअट्टिज्ज) वहा से वापिस लौट आवे।।23।।

अइभूमिं न गच्छेज्जा गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे।।24।।

अन्वयार्थ– (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मुणी) साधु (अइभूमि) अति भूमि मे अर्थात् गृहस्थ की मर्यादित भूमि से आगे उसकी अनुज्ञा के बिना (न गच्छेज्जा) न जावे किन्तु (कुलस्स) कुल की (भूमि) भूमि को (जाणित्ता) जानकर (मिय भूमि) जिस कुल का जैसा आचार हो वहा तक की परिमित भूमि मे ही (परक्कमे) जावे, क्योकि परिमित मर्यादा से आगे जाने पर दाता क्रोधित हो सकता है।।24।।

तत्थेव पडिलेहिज्जा भूमिभागं वियक्खणो।
सिणाणस्स य वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए।।25।।

अन्वयार्थ— (वियक्खणो) भिक्षा के लिए गया हुआ विचक्षण साधु (तत्थेव) उस (भूमिभाग) मर्यादित भूमि की (पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे अर्थात् उस भूमि को पूजकर खडा रहे। वहा खडा हुआ साधु (सिणाणस्स) स्नानघर की तरफ (य) और (वच्चस्स) पाखाने की तरफ (सलोग) दृष्टि (परिवज्जए) न डाले।।25।।

भावार्थ— जहा खडे रहने से स्नानघर और पाखाना आदि दिखाई देते हो तो विचक्षण साधु ऐसे स्थान को छोडकर दूसरी जगह खडा हो जाय।

दगमट्टिय आयाणे, बीयाणि हरियाणि य।
परिवज्जतो चिट्ठिज्जा, सव्विंदिय समाहिए।।26।।

अन्वयार्थ— (सव्विदियसमाहिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखता हुआ समाधिवत मुनि (दगमट्टिय आयाणे) सचित्त जल और सचित्त मिट्टीयुक्त जगह को (बीयाणि) बीजो को (य) और (हरियाणि) हरित काय को (परिवज्जतो) वर्जकर (चिट्ठिज्जा) यतनापूर्वक खडा रहे।।26।।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयणं।
अकप्पिय न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्जा कप्पिय।।27।।

अन्वयार्थ— (तत्थ) वहा मर्यादित भूमि मे (चिट्ठमाणस्स) खडे हुए (से) साधु को दाता (पाणभोयण) आहार—पानी (आहरे) देवे-बहरावे और यदि आहारादि (कप्पिय) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे किन्तु (अकप्पिय) अकल्पनीय आहारादि (न गिण्हिज्जा-न इच्छिज्जा) ग्रहण न करे।।27।।

आहरती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।28।।

अन्वयार्थ— (आहरती) आहार—पानी देती हुई बाई (सिया) यदि कदाचित् (तत्थ) वहा (भोयण) आहार—पानी को (परिसाडिज्ज)

गिराती हुई लावे तो (दितिय) देती उस बाई को साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार–पानी (मे) मुझे (न कप्पइ) नही कल्पता है।।28।।

संमद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।
असजमकरिं नच्चा, तारिस परिवज्जए।।29।।

अन्वयार्थ– यदि (पाणाणि) प्राणियो को (बीयाणि) बीजो को (य) और (हरियाणि) हरी वनस्पति को (समद्दमाणी) पैरो आदि से कुचलती हुई बाई आहार–पानी देवे तो (तारिस) इस प्रकार (असजमकरिं) साधु के लिए अयतना करने वाली (नच्चा) जानकर साधु उसे (परिवज्जए) वर्ज दे अर्थात् न ले।

साहट्टु निक्खिवित्ताणं, सचित्तं घट्टियाणि य।
तहेव समणट्ठाए, उदगं सपणुल्लिया।।30।।

ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाणभोयण।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।31।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (समणट्ठाए) साधु के लिए (सचित्त) सचित्त वस्तु को (साहट्टु) अचित्त वस्तु के साथ मिलाकर (निक्खिवित्ताण) सचित्त वस्तु पर आहारादि को रखकर (य) ओर (घट्टियाणि) सघट्टा करके तथा (उदग) सचित्त पानी को (सपणुल्लिया) हिलाकर (ओगाहइत्ता) पानी मे चल करके (चलइत्ता) रुके हुए पानी को नाली आदि से निकाल करके (पाणभोयण) आहार–पानी (आहरे) देवे तो (दितिय) देती हुई उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार–पानी (मे) मुझे (न कप्पइ) नही कल्पता है।।30–31।।

पुरे कम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायण वा।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।32।।

अन्वयार्थ– (हत्थेण) ऐसा हाथ (दव्वीए) कुडछी-चमचा (वा) अथवा (भायणेण) बरतन आदि जिनको (पुरेकम्मेण) साधु को आहारादि देने के लिए पहले धोये हो, उनसे (दितिय) आहारादि देती हुई बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।32।।

टिप्पणी– यदि किसी ने कच्चे पानी से बर्तन अथवा हाथ धोए हो तब साधु को उससे आहार लेना नही कल्पता, किन्तु कदाचित् बर्तन सूखा माजा गया हो, या प्रासुक गर्म जल से हाथ धोए हो तो दोष नही लगता।

एव उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया उसे।
हरियाले हिगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे।।33।।

गेरुय वन्निय सेढिय, सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस कए य।
उक्किट्ठ मससट्ठे, संसट्ठे चेव बोद्धव्वे।।34।।

अन्वयार्थ– (एव) इसी प्रकार (उदउल्ले) सचित्त जल से गीले हाथो से (ससिणिद्धे) गीली रेखाओसहित हाथो से (ससरक्खे) सचित्त रज से भरे हुए (मट्टिया) सचित्त मिट्टी (उसे-ऊसे-औसे) खार (हरियाले) हरताल (हिगुलए) हिगुलू (मणोसिला) मैनसिल (अजणे) अजन (लोणे) सचित्त नमक (गेरुय) गेरु (बन्निय) पीली मिट्टी (सेढिय-सेडिय) सफेद खडिया मिट्टी (सोरट्ठिय) फिटकडी (पिट्ठ) तत्काल पीसा हुआ आटा (कुक्कुस कए) तत्काल कूटे हुए धान के तुष (य) और (उक्किट्ठ) बडे फल अर्थात् कोहले, तरबूज आदि के टुकडे (चेव) इन उपरोक्त पदार्थो मे से किसी भी पदार्थ से (ससट्ठे) हाथ भरे हुए हो अथवा (असंसट्ठे) उपरोक्त पदार्थो से भरे हुए हाथ आदि को सचित्त पानी से धोकर साधु को आहार–पानी दे तो साधु न ले। (बौद्धव्वे) इस प्रकार की सारी बाते साधु को जान लेनी चाहिए।।33–34।।

टिप्पणी– उपरोक्त गाथाओ मे आने वाले नाम विभिन्न प्रकार की सचित्त मिट्टियो के है अत साधु इन मिट्टियो के सघट्टे-स्पर्श को वर्ज कर गोचरी करे। तत्काल के कूटे हुए धान के तुष और तरबूज आदि के टुकडे मे भी सचित्त की आशका रहती है, अत इनका निषेध किया है।

असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाण न इच्छिज्जा, पच्छाकम्म जहि भवे।।35।।

अन्वयार्थ– (असंसट्ठेण) शाक आदि से अलिप्त, बिना भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (दव्वीए) कुडछी-चमचा से (वा) अथवा (भायणेण) बरतन से (दिज्जमाण) दिये जाने वाले आहारादि को मुनि (न इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् उस आहार को साधु न लेवे क्योकि (जहि) जहा (पच्छाकम्म) पश्चात्कर्म-साधु को आहरादि देने के बाद सचित्त जल से हाथ आदि को धोने की क्रिया (भवे) लगने की सभावना हो।।35।।

संसट्ठेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाण पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणिय भवे।।36।।

अन्वयार्थ– (ससट्ठेण) शाक आदि पदार्थो से भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (य) या (दव्वीए) कुडछी से (वा) अथवा (भायणेण) बरतन से (दिज्जमाण) आहारादि देवे (ज) और वह आहारादि (एसणिय) एषणीय-निर्दोष (भवे) हो तो (तत्थ) उस आहार को मुनि (पडिच्छिज्जा) ग्रहण करे।।36।।

भावार्थ– मुनि को जो वस्तु दी जा रही हो, उसी से यदि हाथ, कुडछी आदि भरे हुए हो तो मुनि उस आहारादि को ग्रहण कर सकता है।

दुण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए।
दिज्जमाण न इच्छिज्जा, छदं से पडिलेहए।।37।।

अन्वयार्थ– (तत्थ) गृहस्थ के घर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो, उनमे से यदि (एगो) एक व्यक्ति (निमतए) निमत्रण करे अर्थात् आहारादि अपनी थाली मे से प्रासुक एव झूठा न होने पर बहराना चाहे, धामे (तु) तो (दिज्जमाण) दिये जाने वाले उस आहार की साधु (न इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (से) उस निमत्रण न करने वाले दूसरे व्यक्ति (छद) अभिप्राय को (पडिलेहए) देखे।।37।।

दुण्ह तु भुजमाणाण, दो वि तत्थ निमंतए।
दिज्जमाण पडिच्छिज्जा, जं तत्थे सणिय भवे।।38।।

अन्वयार्थ– (तु) यदि (तत्थ) गृहस्थ के घर पर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो और (दो वि) वे दोनो (निमतए) निमत्रण करे और (ज) यदि (दिज्जमाण) दिया जाने वाला (तत्थ) वह आहार (एसणिय) एषणीय-निर्दोष (भवे) हो तो साधु (पडिच्छिज्जा) उसे ग्रहण कर सकता है।।38।।

गुव्विणीए उवण्णत्थं, विविह पाणभोयण।
भुंजमाणं विवज्जिज्जा, भुत्तसेस पडिच्छए।।39।।

अन्वयार्थ– (गुव्विणीए) गर्भवती स्त्री के लिए (उवणत्थ) बना कर रखे हुए (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार पानी को यदि वह (भुजमाण) खा रही हो, तो साधु (विवज्जिज्जा) उस आहारादि को वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (भुत्तसेस) उस गर्भवती के भोजन कर लेने के बाद जो आहारादि झूठा न हो और प्रासुक बचा हुआ हो तो (पडिच्छए) उसे ग्रहण कर सकता है।।39।।

सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी काल मासिणी।
उट्ठिआ वा निसीइज्जा, निसन्ना वा पुणुट्ठए।।40।।

तं भवे भत्तपाण तु, संजयाण अकप्पियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।41।।

अन्वयार्थ– (सिया) यदि कदाचित् (कालमासिणी) नजदीक प्रसव वाली (गुव्विणी) गर्भवती स्त्री (उट्ठिआ वा) जो पहले से खडी हो किन्तु (समणट्ठाए) साधु को आहारादि देने के लिए (निसीइज्जा) बैठे (वा) अथवा (निसन्ना) पहले से बैठी हुई वह साधु के लिए (पुण) फिर (उट्ठए) खडी हो (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार–पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।40–41।।

थणगं पिज्जमाणी दारग वा कुमारिय।
तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहारे पाण भोयणं।।42।।
त भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।43।।

अन्वयार्थ– (दारग) बालक को (वा) अथवा (कुमारिय) बालिका को (थणग पिज्जमाणी-पिज्जमाणी य) स्तनपान कराती हुई, चुघाती हुई बाई (त) उस (रोयत) रोते हुए बच्चे या बच्ची को (निक्खिवित्तु) नीचे रखकर (पाणभोयण) आहार–पानी (आहरे) देवे (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार–पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।42–43।।

जं भवे भत्तपाणं तु, कप्पा कप्पम्मि सकियं।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।44।।

अन्वयार्थ– (ज) जो (भत्तपाण) आहार–पानी (कप्पाकप्पम्मि) कल्पनीय और अकल्पनीय की (सकिय) शका से युक्त हो (तु) तो

साधु (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार–पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।44।।

दगवारेण पिहिय, नीसाए पोढएण वा।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण वि केणइ।।45।।

त च उब्भिदिआ दिज्जा, समणट्ठाए व दावए।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।46।।

अन्वयार्थ–(दगवारेण) सचित्त जल के घडे से (नीसाए) चक्की से (वा) अथवा (पीढएण) चौकी या बाजोट से (वा) अथवा (लोढेण) पत्थर से (वि) अथवा इसी तरह के (केणइ) किसी दूसरे पदार्थ से आहार–पानी का बरतन (पिहिय) ढका हुआ हो (वि) अथवा (लेवेण) मिट्टी आदि के लेप से (सिलेसेण) अथवा मोम, लाख आदि किसी चिकने पदार्थ से सील या छानण लगी हुई हो (त च) उसे यदि (समणट्ठाए) साधु के लिए (उब्भिदिआ-उब्भिदिउ) खोलकर (दिज्जा) आप स्वय देवे (व) अथवा (दावए) दूसरे से दिलावे तो (दिति) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार–पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।45–46।।

असण पाणग वावि, खाइमं साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पगड इमं।।47।।

त भवे भत्तपाण तु, संजयाण अकप्पिय।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।48।।

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइम तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्ठा पगड इमं।।49।।

त भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।50।।

असण पाणगं वावि, खाइमं साइम तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, वणिमट्ठा पगडं इमं।।51।।
त भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।52।।
असणं पाणग वावि, खाइमं साइमं तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं।।53।।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।54।।

अन्वयार्थ– (ज) जिस (असण) आहार (पाणग) पानी (वावि) अथवा (खाइम) खादिम– मेवा (साइम) स्वादिम– लौग, इलायची आदि के विषय मे साधु (जाणिज्जा-जाणेज्ज) इस प्रकार जान ले (वा) अथवा (सुणिज्जा-सुणेज्जा) किसी से सुन ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुण्णट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचको के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओ के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (तं) वह (भत्तपाण) आहार–पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है। इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।47–54।।

टिप्पणी– दानशाला आदि का भोजन यदि कोई बहराना चाहे तो साधु उसकी गवेषणा करे। अगर दानशाला चलाने वाला स्वय उस भोजन मे से खाता हो, तब तो साधु वह आहार-पानी प्रासुक होने की दशा मे ले सकता है, अन्यथा नहीं।

उद्देसियं कीयगड, पूइकम्मं च आहडं।
अज्झोयर पामिच्चं, मीसजाय विवज्जए।।55।।

अन्वयार्थ– जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए बनाया हुआ हो, (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो, (पूइकम्म) निर्दोष आहार मे आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो, (अज्झोयर) अपने लिये बनाये जाने वाले आहार मे साधु के निमित्त से और डाला हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो, इन दूषणो से दूषित आहार को साधु (विवज्जए) छोड दे अर्थात् ग्रहण न करे।।55।।

टिप्पणी– किसी विशेष साधु के लिए बनाया गया आहार आदि यदि वही साधु ले तो आधाकर्मी दोष और यदि कोई अन्य साधु ले तो उद्देशीय दोष लगता है। प्रासुक निर्दोष आहार-पानी मे आधाकर्मी आहार का अश मात्र भी मिल जाने पर पूर्तिकम दोष है। साधु की दृष्टि-सीमा से दूर रखी हुई वस्तु यदि सामने लाकर साधु को दी जाए तो प्रासुक-अप्रासुक अथवा सचित्त के सघट्टे वाली शका से युक्त होने पर वह अशनादि साधु के लिए अग्राह्य है।

उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं।
सुच्चा निस्सकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजए।।56।।

अन्वयार्थ– सन्देह हो जाने पर (सजए) साधु दाता से (से) उस आहारादि की (उग्गम) उत्पत्ति के विषय मे (पुच्छिज्जा) पूछे कि यह आहार (कस्सट्ठा) किसके लिए (वा) और (केण) किसने (कड) तैयार किया है ? फिर (सुच्चा) गृहस्थ के मुख से उसकी उत्पत्ति को सुनकर यदि वह (निस्सकिय) शकारहित (गाथा न 55 मे वर्णित) औदेशिक आदि दोषो से रहित) हो (अ) और (सुद्ध) निर्दोष हो तो साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे, अन्यथा नहीं।।56।।

असणं पाणगं वावि, खाइम साइमं तहा।
पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा।।57।।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।58।।

अन्वयार्थ– (असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशन-पान–खादिम–स्वादिम चारो प्रकार का आहार (पुप्फेसु) फूलो से (बीएसु) बीजो से (वा) अथवा (हरिएसु) हरी लीलोती से (उम्मीस) मिश्रित, स्पर्शित (होज्ज) हो जाय अर्थात् परस्पर मिल जाय, तो ऐसा आहार–पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है।।57–58।।

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।
उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं, उत्तिंग पणगेसु वा।।59।।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।60।।

अन्वयार्थ– (असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (उदगम्मि) सचित्त जल के ऊपर (वा) अथवा (उतिग पणगेसु) चीटियो के बिल पर या लीलन–फूलन पर (निक्खित्त) रखा हुआ हो तो ऐसा आहार–पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है।। 59–60।।

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।
तेउम्मि हुज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिया दए।। 61।।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पिय।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।62।।

अन्वयार्थ– (असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (तेउम्मि-अगणिम्मि) अग्नि के ऊपर

(निक्खित्त) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) अथवा (त) अग्नि के साथ (सघट्टिया) सघट्टा हो रहा हो, ऐसा अकल्पनीय आहारादि (दए) दे तो साधु ग्रहण न करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है।।61–62।।

एवं उस्सक्किया ओसक्किया, उज्जालिया पज्जालिय। निव्वाविया उर्स्सिचिया निर्स्सिचिया, ओवत्तिया ओयारिया दए।।63।।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।64।।

अन्वयार्थ– (एव) जिस प्रकार अग्नि से सघट्टा हो रहा है ऐसे आहारादि को मुनि नहीं लेते, उसी प्रकार (उस्सक्किया- उर्स्सिक्किया) अग्नि मे ईधन आगे सरका कर, (ओसक्किया) अधिक ईधन को अग्नि से बाहर निकाल कर, (उज्जालिया) बुझी हुई अग्नि को फूक आदि से सुलगा कर, (पज्जालिया) अग्नि को अधिक प्रज्वलित करके (निव्वाविया) अग्नि को बुझाकर, (उर्स्सिचिया) अग्नि पर पकते हुए आहार मे से कुछ बाहर निकाल कर, (निर्स्सिचिया) उफनते हुए दूध आदि मे पानी का छिडका देकर (ओवत्तिया- उव्वत्तिया-उवत्तिया) अग्नि पर रहे हुए आहारादि को दूसरे बरतन में निकालकर (ओयारिया) अग्नि पर रहे हुए बरतन को नीचे उतारकर (दए) फिर आहार–पानी दे तो ऐसे अकल्पनीय आहार–पानी को साधु ग्रहण न करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है।।63–64।।

भावार्थ– 'साधु को आहारादि देने मे समय लगेगा' इतनी देर मे अग्नि ठण्डी न पड जाय अथवा अग्नि पर रहा हुआ आहारादि जल न जाय, ऐसा विचार कर यदि दाता अग्नि की उपरोक्त क्रिया करके आहारादि दे तो साधु उसे ग्रहण न करे।

हुज्ज कट्ठं सिलं वावि, इट्टालं वावि एगया।
ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं।।65।।

न तेण भिक्खू गच्छिज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो।
गंभीरं झुसिरं चेव, सव्विदिय समाहिए।।66।।

अन्वयार्थ– (एगया) कभी वर्षा आदि के समय (सकमट्ठाए) आने जाने के लिए (कट्ठ) काष्ठ (वावि) अथवा (सिल) शिला (वावि) अथवा (इट्टाल) ईट का टुकडा (ठविय) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) और (त) यदि वह (चलाचल) अस्थिर-डगमगाता (होज्ज) हो तो (तेण) उस मार्ग से तथा जो मार्ग (गभीर) गहरा–ऊडा होने से प्रकाशरहित हो और (झुसिर) जो मार्ग पोला हो, उस मार्ग से (सव्विदिय समाहिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखने वाला (भिक्खू) साधु (न) नही (गच्छेज्जा) जावे, क्योकि (तत्थ) वहा पर गमन करने से सर्वज्ञ प्रभु ने (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है।।65–66।।

निस्सेणिं फलगं पीढं, उस्सवित्ताणमारुहे।
मचं कीलं च पासायं, समणट्ठाए व दावए।।67।।
दुरूहमाणी पवडिज्जा, हत्थं पायं व लूसए।
पुढवि जीवे वि हिंसिज्जा, जे य तन्निस्सिया जगे।।68।।
एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो।
तम्हा मालोहडं भिक्ख, ण पडिगिण्हंति संजया।।69।।

अन्वयार्थ– यदि दान देने वाली स्त्री (समणट्ठाए) साधु के लिए (निस्सेणि) नि सरणी, (फलग) पाटिया, (पीढ) चौकी, (मच) खाट (व) और (कील) कीले को (उस्सवित्ताण) ऊचा-खडा करके (पासाय) प्रासाद- दूसरी मजिल पर (आरुहे) चढ कर (दावए) अशनादि चारो प्रकार का आहार देवे तो (दुरूहमाणी) इस प्रकार कष्ट से चढती हुई वह (पवडिज्जा-पवडेज्जा -पडिवज्जा) शायद गिर पडे (व) और (हत्थ) उसका हाथ (पाय) पैर आदि (लूसए) टूट जाय तथा (पुढविजीवे) पृथ्वीकाय के जीवो की भी (हिसिज्जा) हिसा होगी (य) और (जे) जो (तन्निस्सिया) उस पृथ्वी की नेश्राय

मे रहे हुए (जगे वि) त्रस जीवो की भी हिसा होगी। (तम्हा) इसलिए (एयारिसे) ऐसे पूर्वोक्त प्रकार के (महादोसे) महादोषो को (जाणिऊण) जानकर (सजया) शुद्ध सयम का पालन करने वाले (महेसिणो) महर्षि लोग (मालोहड) ऊपर के मकान से नि सरणी आदि द्वारा उतार कर लाई हुई (भिक्ख) भिक्षा को (न पडिगिण्हति) ग्रहण नही करते। ।67–68–69।।

कंदं मूल पलब वा, आम छिन्नं च सन्निर।
तुबाग सिंगबेर च, आमग परिवज्जए।।70।।

अन्वयार्थ– (आम) कच्चा (कद) जमीकन्द (मूल) मूल- जड (पलब) तालफल (वा) अथवा (छिन्न) काटी हुई भी (आमग) सचित्त (सन्निर) बथुए आदि पत्तो की भाजी (तुबाग) घीया (च) और (सिगबेर) अदरख आदि सब प्रकार की सचित्त वनस्पति जिसे अग्नि आदि का शस्त्र न लगा हो, उसे साधु (परिवज्जए) छोड दे।।70।।

टिप्पणी– जो वस्तु अग्नि और अग्नि से अतिरिक्त सूर्य ऊष्मा या अन्य विधि द्वारा अन्य प्रकार से भी पक चुकी है– अचित्त हो चुकी हो, वे सभी सूझती होनेपर साधु के लिए कल्पनीय है जैसे– आम, एरड, ककडी, केला आदि। जमीकन्द मात्र अकल्पनीय नही है, अपितु अचित्त होने की दशा मे कुछ को छोडकर अन्य सभी अग्राह्य नही है।

तहेव सत्तु चुन्नाइ, कोल चुन्नाइं आवणे।
सक्कुलि फाणिअं पूअ, अन्नं वावि तहाविह।।71।।

विक्कायमाणं पसढ, रएण परिफासियं।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।72।।

अन्वयार्थ– (तहेव) जिस प्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य है उसी प्रकार (आवगे) बाजार मे दूकान पर (विक्कायमाण) बेचने के लिए (पसढ) खुले रूप से रखे हुए (रएण) सचित्त रज से (परिफासिय)

युक्त (सत्तु चुन्नाइ) जौ आदि के सत्तू का चूर्ण, (कोल चुन्नाइ) बोरो का चूर्ण (सक्कुलि) तिल पापडी, (फाणिअ) गीला गुड, (पूअ) मालपूवा तथा (तहाविह) इसी प्रकार के (अन्न वावि) और भी पदार्थ साधु को देने लगे तो (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (मे) मुझे (तारिस) इस प्रकार का आहार (न कप्पइ) नहीं कल्पता है।।71–72।।

बहु अट्ठियं पुग्गलं, अणिमिसं वा बहुकंटय।
अत्थियं तिदुयं बिल्लं, उछुखंडं व सिंबलिं।।73।।

अप्पे सिया भोयण जाए, बहु उज्झियधम्मियं।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पई तारिसं।।74।।

अन्वयार्थ– X (बहुअट्ठिय) बहुत बीजो वाला फल जैसे सीताफल, (पुग्गल) पुद्‌गल वृक्ष का फल, (अणिमिस) अनानास का फल (बहुकटय) बहुत काटो वाला फल– जैसे पनस, कटहल आदि। इस तरह व्याख्यान करने से ये चार पद अलग-अलग हैं। कहीं-कहीं 'बहुअट्ठिय' और 'बहुकटय'– इन दो पदो को विशेषण रखा है तब ऐसा अर्थ किया है– (बहुअट्ठिय) बहुत बीजो वाले फल का (पुग्गल) गिर-गूदा (वा) और (बहुकटय) बहुत काटो वाला (अणिमिस) अनानास का फल। (अत्थिय) अस्थिक- अगत्थिया वृक्ष का फल, (तिदुय) तिन्दरुक -टींबरु वृक्ष का फल (बिल्ल) बेल का फल (उच्छुखण्ड) इक्षुखण्ड गडेरी (व) और (सिबलि) सेमल का फल– ये उपरोक्त नाम वाले फल (भोयणजाए) जिनमे खाने योग्य अश (अप्पे) थोडा (सिया) हो

X टिप्पणी-अट्ठिय गुठली (आप्टे कृत संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी और जैनागम शब्द संग्रह, पृष्ठ ३६)। बहुअट्ठियं-बहु बीजकमिति (अवचूरिका जो विक्रम सवत् १६६५ से पहले की बनी हुई है, उसमें बहुअट्ठिय शब्द का अर्थ 'बहुबीजक' ऐसा लिखा है)। निघन्टु कोष में 'बहुबीजक' शब्द सीताफल के लिए आया है यथा सीताफलं गण्डमात्र वैदेहीवल्लभं तथा। कृष्णबीजं चाग्निभाख्यमातृप्यं बहुबीजकं।।

और (बहु उज्झिय धम्मिय धम्मिए) फेक देने योग्य अश अधिक हो, ऐसे फल आदि (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।73–74।।

तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वार धोयण।
ससेइमं चाउलोदग, अहुणा धोयं विवज्जए।।75।।

अन्वयार्थ– (तहेव) जिस प्रकार आहार के विषय मे बतलाया गया है उसी प्रकार (पाण) पानी के विषय मे आगे बताया जाता है (उच्चावय) उच्च अर्थात् अच्छे वर्णादि से युक्त दाख आदि का धोवन और अवच यानी सुन्दर वर्ण से रहित मेथी, केर आदि का धोवन (अदुवा) अथवा (वार धोयण) गुड के घडे का धोवन (ससेइम) आटे की कठौती का धोवन (चाउलोदग) चावलो का धोवन– ये सब धोवन यदि (अहुणा धोय) तुरन्त के धोये हुए हो तो साधु (विवज्जए) उन्हे छोड देवे अर्थात् ग्रहण न करे।।75।।

जं जाणेज्ज चिरा धोयं, मईए दंसणेण वा।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, ज च निस्संकियं भवे।।76।।

अन्वयार्थ– (मईए) अपनी बुद्धि से (वा) अथवा (दसणेण) देखने से (पडिपुच्छिऊण) गृहस्थ से पूछकर (वा) अथवा (सुच्चा) सुनकर (ज) जो धोवन (चिराधोय) बहुत काल का धोया हुआ है ऐसा (जाणेज्ज) जाने (च) और (ज) जो (निस्सकिय) शकारहित (भवे) हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है।।76।।

अजीवं परिणय नच्चा, पडिगाहिज्ज संजए।
अह संकियं भविज्जा आसाइत्ताण रोयए।।77।।

अन्वयार्थ– (अजीव) जल को जीवरहित और (परिणय) शस्त्रपरिणत (नच्चा) जानकर (सजए) साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण

करे (अह) यदि वह (सकिय) इससे प्यास बुझेगी या नहीं– इस प्रकार की शका से युक्त (भविज्जा) हो तो उसे (आसाइत्ताण) चख करके (रोयए) निर्णय करे।।77।।

थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे।
मा मे अच्चबिल पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए।।78।।

अन्वयार्थ– धोवन आदि को चख कर निर्णय करने के लिए साधु दाता से कहे कि (आसायणट्ठाए) चखने के लिए (थोव) थोडा सा धोवन (मे) मेरे (हत्थगम्मि) हाथ मे (दलाहि) दो। क्योकि (अच्चविल) अत्यन्त खट्टा (पूय–पूइ) बिगडा हुआ और (तिण्ह) प्यास को (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ धोवन (मे) मेरे लिए (मा) उपयोगी नही होगा।।78।।

तं च अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।79।।

अन्वयार्थ– (त) उस (अच्चबिल) अत्यन्त खट्टे (पूय-पूइ) बिगडे हुए (च) और (तिण्ह) प्यास (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ, ऐसे धोवन को (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का धोवन (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।79।।

तं च होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छियं।
त अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए।।80।।

अन्वयार्थ– यदि कदाचित् (अकामेण-अकामेण) बिना इच्छा से (च) अथवा (विमणेण) बिना मन से– ध्यान न रहने के कारण (पडिच्छिय होज्ज-होज्जा-हुज्जा) उपरोक्त प्रकार का धोवन ग्रहण कर लिया हो तो साधु (त) उस धोवन को (न) न तो (अप्पणा) आप स्वय (पिबे) पीवे और (नो वि) न (अन्नस्स) दूसरो को (दावए) पिलावे।।80।।

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया।
जयंपरि ट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे।।81।।

अन्वयार्थ– (एगत) एकान्त स्थान मे (अवक्कमित्ता) जाकर (अचित्त) एकेन्द्रियादि प्राणीरहित स्थान को (पडिलेहिया) पूजकर उस धोवन को (जय) यतना से (परिट्ठविज्जा) परठ दे। (परिट्ठप्प) परिठव करके तीन बार वोसिरे-वोसिरे कहे, फिर वापिस आकर (पडिक्कमे) इरियावहिया का प्रतिक्रमण करे।।81।।

सिया य गोयरग्गगओ, इच्छिज्जा परिभोत्तुअ।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं।।82।।
अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे।
हत्थगं सपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए।।83।।

अन्वयार्थ– (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मेहावी) समाचारी का जानकर बुद्धिमान् (सजए) साधु (सिया) यदि कदाचित् ग्लान अवस्था के कारण अथवा किसी कारण से (परिभोत्तुअ- परिभुत्तुअ-परिभुजिउ) वहीं पर आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे, तो वहा (फासुय) जीवरहित (कुट्ठग) कोठे आदि को (पडिलेहित्ताण) पडिलेहणा करके (य) और (अणुन्नवित्तु) गृहस्थ की आज्ञा मागकर (तत्थ) वहा (भित्तिमूल) दीवार की आड मे (वा) अथवा (पडिच्छन्नम्मि) ऊपर से छाये हुए स्थान मे (हत्थग) पूजनी से हाथ आदि को (सपमज्जित्ता) पूजकर (सवुडे) उपयोगपूर्वक (भुजिज्ज) आहार करे।।82–83।।

टिप्पणी– रुग्ण अथवा तपस्यागत निर्बलता की स्थिति मे **अपवाद स्वरूप** ही इस प्रकार का विधान है।

तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्ठियं कटओ सिया।
तण कट्ठ सक्करं वावि, अन्नं वावि तहाविहं।।84।।
तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए।
हत्थेणं तं गहेऊण, एगंतमवक्कमे।।85।।

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे।।86।।

अन्वयार्थ– (तत्थ) वहा कोठे आदि मे (भुजमाणस्स) आहार करते हुए (से) साधु के आहार मे (सिया) यदि कदाचित् (अट्ठिय) बीज-गुठली (कटओ) काटा (तण) तिनका (कट्ठ) काठ का टुकडा (वावि) अथवा (सक्कर) छोटा ककर तथा (अन्न वावि) और भी (तहाविह) इसी प्रकार का कोई पदार्थ आ जाय तो (त) उसे (उक्खिवित्तु) निकाल कर (न निक्खिवे) इधर–उधर न फेके तथा (आसएण) मुख से भी (न छड्डए) न फेके, न थूके किन्तु (हत्थेण) हाथ से (त) उसे (गहेऊण) ग्रहण करके (एगत) एकात स्थान मे (अवकम्मे) जावे और (एगत) एकान्त स्थान मे (अवक्कमित्ता) जाकर (अचित्त) जीवरहित अचित्त स्थान की (पडिलेहिया) पडिलेहणा करके (जय) यतनापूर्वक उसे (परिट्ठविज्जा) परठ दे और (परिट्ठप्प) परठ करके (पडिक्कमे) वापस लौटकर प्रतिक्रमण करे अर्थात् इरियावहिया का ध्यान करे।।84–85–86।।

सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुअं।
सपिंडपायमागम्म, उंडुअ पडिलेहिया।।87।।
विणएण पविसित्ताप, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे।।88।।

अन्वयार्थ– (सिया) जो (भिक्खू) साधु (सिज्ज) अपने स्थान मे ही (आगम्म) आकर (भुत्तुअ-भोत्तुअ) आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो (सपिडपाय) वह उस शुद्ध भिक्षा को लेकर (आगम्म) अपने स्थान मे आवे (य) और (विणएण-विणएण) विनयपूर्वक (पविसित्ता) स्थानक मे प्रवेश करके (उडुअ) भोजन करने के स्थान को (पडिलेहिया) अच्छी तरह देखे (य) और (गुरुणो) गुरु के (सगासे) पास (आगओ) आकर (मुणी) मुनि (इरियावहिय) इरियावहिया का पाठ (आयाय) पढकर (पडिक्कमे) कायोत्सर्ग करे।।87–88।।

आभो इत्ताण नीसेसं, अइयारं च जहक्कमं।
गमणागमणे चेव, भत्तपाणे य सजए।।89।।

उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
आलोए गुरु सगासे, जं जहा गहिय भवे।।90।।

अन्वयार्थ– (सजए) कायोत्सर्ग करते समय मुनि (गमणागमणे) जाने–आने मे (चेव) और (भत्तपाणे) आहार–पानी के ग्रहण करने मे लगे हुए (नीसेस) सब (अइयार) अतिचारो को (य) तथा (ज) जो आहार–पानी (जहा) जिस प्रकार से (गहिय) ग्रहण किया (भवे) हो उसे (जहक्कम) यथाक्रम से (आभोइत्ताण-आभोएत्ताण) उपयोग पूर्वक चिन्तवन करके (उज्जुप्पन्नो) सरल बुद्धि वाला (अणुव्विग्गो) 'उद्वेगरहित वह मुनि (अव्वक्खित्तेण) एकाग्र (चेयसा) चित्त से (गुरुसगासे) गुरु के पास (आलोए) आलोचना करे।।89–90।।'

न सम्ममालोइयं हुज्जा, पुव्विं पच्छा द जं कडं।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्ठो चितए इमं।।91।।

अन्वयार्थ– (ज) जो अतिचार (पुव्वि) पहले (व) तथा (पच्छा) पीछे (कड) लगा है उसकी (सम्म) अच्छी तरह से क्रमपूर्वक (आलोइय) आलोचना (न हुज्जा) न हुई हो तो (तस्स) उस अतिचार की (पुणो) फिर से (पडिक्कमे) आलोचना करे और (वोसट्ठो) कायोत्सर्ग मे रहा हुआ साधु (इम) आगे की गाथा मे कहे गये अर्थ का (चितए) चिन्तवन करे।।91।।

भावार्थ– जो अतिचार पहले लगा हो उसकी पहले आलोचना करनी चाहिए और पीछे लगे हुए अतिचार की पीछे आलोचना करनी चाहिए, किन्तु पहले की पीछे और पीछे की पहले आलोचना न करनी चाहिए।

अहो जिणेहि असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया।
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा।।92।।

अन्वयार्थ– कायोत्सर्ग मे स्थित मुनि इस प्रकार विचार करे कि (अहो) अहो ! (जिणेहि) जिनेश्वर देवो ने (मोक्ख-मुक्खसाहण हेउस्स) मोक्षप्राप्ति के साधनभूत (साहुदेहस्स) साधु के शरीर का (धारणा) निर्वाह करने के लिए (साहूण) साधुओ के लिए कैसी (असावज्जा) निर्दोष (वित्ती) भिक्षावृत्ति (देसिया) बताई है।।92।।

णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं।
सज्झायं पट्ठवित्ताणं, वीस मेज्ज खणं मुणी।।93।।

अन्वयार्थ– (मुणी) मुनि (णमुक्कारेण) 'णमो अरिहताण' पद का उच्चारण करके (पारित्ता-पारेत्ता) कायोत्सर्ग को पारे तथा (जिणसथव) 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि से तीर्थकर भगवान् की स्तुति (करित्ता-करेत्ता) करके तथा (सज्झाय) कुछ स्वाध्याय (पट्ठवित्ताण) करके (खण) कुछ देर के लिए (वीसमेज्ज) विश्राम करे।।93।।

वीसमंतो इमं चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ।
जइ मे अणुग्गहं कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ।।94।।

अन्वयार्थ– (लाभमट्ठिओ) निर्जरा रूपी लाभ का इच्छुक साधु (वीसमंतो) विश्राम करता हुआ (हियमट्ठ) अपने कल्याण के लिए (इम) इस प्रकार (चिते) चिन्तवन करे कि– (जइ) यदि कोई (साहू) साधु (मे) मुझ पर (अणुग्गह) अनुग्रह (कुज्जा) करे अर्थात् मेरे आहार मे से कुछ आहार ग्रहण करे तो (तारिओ) मै इस ससार समुद्र से पार (हुज्जामि) हो जाऊ।।94।।

साहवो तो चिअत्तेणं, निमंतिज्ज जहक्कमं।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए।।95।।

अन्वयार्थ– (तो) इस प्रकार विचार कर वह मुनि गुरु आज्ञा मिलने पर (साहवो) सब साधुओ को (चिअत्तेण) प्रीतिपूर्वक (जहक्कम) यथाक्रम से अर्थात् सब से पहले बडे साधु को तत्पश्चात् छोटे को,

इस प्रकार क्रम से (निमतिज्ज) निमत्रण करे। फिर (जइ) यदि (तत्थ) उन मे से (केइ) कोई साधु (इच्छिज्जा) आहार लेना चाहे तो उन्हे देकर (तेहि सद्धि तु) उनके साथ (भुजए) आहार करे।।95।।

अह कोइ न इच्छिज्जा, तओ भुजिज्ज एक्कओ।
आलोए भायणे साहू, जय अप्परिसाडिय।।96।।

अन्वयार्थ– (अह) इस प्रकार निमत्रण करने पर भी यदि (कोइ) कोई साधु (न इच्छिज्जा) आहार लेना न चाहे (तओ) तो फिर (साहू) वह साधु (एक्कओ-एगओ) अकेला ही द्रव्य से, स्वय भाव से राग-द्वेषरहित (आलोए) चौडे मुख वाले प्रकाशयुक्त (भायणे) पात्र मे (अप्परिसाडिय-अपरिसाडिय) नीचे नही गिराता हुआ (जय) यतनापूर्वक (भुजिज्ज) आहार करे।।96।।

तित्तग व कडुअं व कसाय, अबिल व महुरं लवणं वा।
एयलद्धमन्नत्थपउत्तं, महुघयं व भुजिज्ज सजए।।97।।

अन्वयार्थ– (अन्नत्थ पउत्त) गृहस्थ के द्वारा अपने लिये बनाया हुआ (एयलद्ध–एय लद्ध) शास्त्रोक्त विधि से मिला हुआ वह आहार यदि (तित्तग) तीखा (व) अथवा (कडुअ) कडवा (व) अथवा (कसाय) कसैला (व) अथवा (अबिल) खट्टा (वा) अथवा (महुर) मीठा अथवा (लवण) नमकीन चाहे कैसा भी हो, किन्तु (सजए) साधु उस आहार को (महुघय व) घी, शक्कर की तरह प्रसन्नतापूर्वक (भुजिज्ज) खावे।।97।।

अरस विरसं वावि, सूइयं वा असूइयं।
उल्ल वा जइ वा सुक्कं, मंथु कुम्मास भोयणं।।98।।
उप्पण्णं नाइ हीलिज्जा, अप्पं वा बहु फासुय।
मुहालद्ध मुहाजीवी, भुजिज्जा दोसविज्जय।।99।

अन्वयार्थ– (उप्पण्ण) शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त (जइ) चाहे (अरस) रसरहित हो (वावि) अथवा (विरस)

चावल एव पुराने धान की बनी हुई रोटी आदि हो (सूइय) बघार–छोंक दिया हुआ शाक हो (वा) अथवा (असूइयं) बघाररहित हो (उल्ल) गीला हो (वा) अथवा (सुक्क) शुष्क भुने हुए चने आदि हो (वा) अथवा (मथु) बोर का चूर्ण या कुलथी का आहार हो अथवा (कुम्मास भोयण) उडद के बाकले हो (अप्प) सरस आहार थोडा हो (वा) अथवा (बहु) नीरस आहार बहुत हो अर्थात् चाहे कैसा भी आहार हो, साधु (नाइ हीलिज्जा) उस आहार की अथवा दाता की अवहेलना-निन्दा न करे किन्तु (मुहाजीवी) निस्पृहभाव से केवल सयम यात्रा का निर्वाह करने के लिए भिक्षा लेने वाला मुनि (मुहालद्ध) दाता द्वारा निस्वार्थ भाव से दिये हुए (फासुय) उस प्रासुक एवं निर्दोष आहार को (दोसवज्जिय) सयोजनादि दोषो को टालकर (भुजिज्जा) समभावपूर्वक भोगवे।।98–99।।

दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गइं।।100।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (मुहादाई) प्रत्युपकार की आशा न रखकर निस्वार्थ बुद्धि से दान देने वाले दाता (उ-हु) निश्चय ही (दुल्लहा-दुल्लहाओ) दुर्लभ है और इसी तरह (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव निस्पृह भाव से शुद्ध भिक्षा लेकर संयम यात्रा का निर्वाह करने वाले भिक्षु (वि) भी (दुल्लहा) दुर्लभ हैं। (मुहादाई) निस्वार्थ भाव से दान देने वाले दाता और (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव निस्पृह भाव से दान लेने वाले भिक्षु (दो वि) दोनो ही (सुग्गइ) सुगति मे (गच्छति) जाते हैं।।100।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

'पिण्डैषणा' नामक पांचवें अध्ययन का दूसरा उद्देशा

पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेवमायाए संजए।
दुगंध वा सुगंध वा, सव्व भुंजे न छड्डए।।1।।

अन्वयार्थ– (संजए) साधु (पडिग्गहं) पात्र में लगे हुए (लेवमायाए-लेवमायाइ-य) लेप मात्र को (वा) चाहे वह (दुगंधं) अमनोज्ञ गंध वाला हो (वा) अथवा (सुगंधं) सुरभि गन्ध वाला हो (सव्वं) उस सब को (संलिहित्ताणं) अंगुली से पोंछकर (भुंजे) खा जाय किन्तु (न छड्डए) कुछ भी न छोड़े।।1।।

सेज्जा निसीहियाए, समावन्नो य गोयरे।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेणं न संथरे।।2।।
तओ कारणमुप्पण्णे, भत्तपाणं गवेसए।
विहिणा पुव्वउत्तेण, इमेणं उत्तरेण य।।3।।

अन्वयार्थ– (सेज्जा) उपाश्रय में (य) अथवा (निसीहियाए) आहार करने के स्थान में (समावन्नो) बैठ कर मुनि (गोयरे) गोचरी से मिले हुए आहार को (भुच्चाणं) यतनापूर्वक भोगवे किन्तु (जइ) यदि कदाचित् वह आहार (अयावयट्ठा) अपर्याप्त हो– आवश्यकता से कम हो और (तेणं) उस आहार से (न संथरे) न सरे अथवा (कारणं) अन्य कोई कारण (उप्पण्णे-समुप्पण्णे) उत्पन्न हो जाय (तओ) तो साधु (पुव्वउत्तेण-वुत्तेण) पहले उद्देशे में कही हुई (य) तथा (इमेणं) इस (उत्तरेण) दूसरे उद्देशे में कही जाने वाली (विहिणा) विधि से (भत्तपाणं) आहार–पानी की (गवेसए) फिर गवेषणा करे।।2–3।।

भावार्थ– गोचरी जाकर लाया हुआ आहार यदि पर्याप्त न हो तो मुनि विधिपूर्वक आहार लाने के लिए दुबारा जा सकता है।

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे।।4।।

अन्वयार्थ– (भिक्खू) साधु (कालेण) जिस गाव मे जो समय भिक्षा का हो उसी समय मे (निक्खमे) भिक्षा के लिए जावे (य) और (कालेण) भिक्षाकाल समाप्त होने पर (पडिक्कमे) वापिस लौट आवे (च) और (अकाल) अकाल को (विवज्जित्ता-विवज्जिजज्जा) छोडकर (काले) उचित काल मे (काल) उस काल के योग्य (समायरे) आचरण करे अर्थात् गोचरी के काल मे गोचरी जावे ओर स्वाध्याय के काल मे स्वाध्याय करे।।4।।

उत्थानिका– अकाल मे भिक्षा के लिए जाने से जो दोष होते है, उनको बताने के लिए टीकाकार ने एक दृष्टान्त की कल्पना की है। एक मुनि अकाल मे भिक्षा लेने के लिए गये। भिक्षा न मिलने से वे वापिस लौट रहे थे। उन्हे म्लानमुख देखकर एक कालचारी साधु उनसे पूछता है कि हे मुने ! आपको भिक्षा मिली या नहीं ? तब वह कहता है कि स्थण्डिल एव सुनसान जगल के समान कजूसो के इस गाव मे भिक्षा कहा पडी है ? इस पर वह कालचारी साधु कहता है कि–

अकाले चरसि भिक्खू, कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवेसं च गरिहसि।।5।।

अन्वयार्थ– (भिक्खू) हे भिक्षु ! आप (अकाले) असमय मे (चरसि) गोचरी के लिए जाते हो (च) और (काल) गोचरी के काल का (न पडिलेहसि) खयाल नहीं रखते हो, अत (अप्पाण) अपनी आत्मा को (किलामेसि) खेदित करते हो (च) और (सनिवेस) गाव की भी (गरिहसि) निन्दा करते हो।।5।।

भावार्थ– महापुरुष कहते है कि– हे भिक्षु ! यदि समय का ध्यान रखे बिना तू किसी ग्रामादि स्थान मे भिक्षा के लिए चला जायगा और समय की अनुकूलता-प्रतिकूलता न देखेगा तो तेरी आत्मा को खेद होगा ओर आहारादि न मिलने से तू ग्राम की भी निन्दा करेगा।

सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं।
अलाभुत्ति न सोइज्जा, तवुत्ति अहियासए।।6।।

अन्वयार्थ– (भिक्खू) साधु (काले) भिक्षा का समय (सइ) होने पर (चरे) गोचरी के लिए जावे और (पुरिसकारिय) भिक्षा के लिए घूमने रूप पुरुषार्थ (कुज्जा) करे (अलाभुत्ति) यदि भिक्षा का लाभ न हो तो फिर (न सोइज्जा) शोक न करे किन्तु (तवुत्ति) आज सहज ही मे मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप होगा, ऐसा विचार कर (अहियासए) क्षुधा परीषह को समभावपूर्वक सहन करे।।6।।

तेहवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुय न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे।।7।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (उच्चावया) उच्च जाति के गौ, अश्व आदि पशु एव हसादि पक्षी और नीच जाति के कौए, कुत्ते, गधे आदि (पाणा) प्राणी यदि (भत्तट्ठाए) चुग्गा–पानी आदि आहार के लिए किसी स्थान पर (समागया) इकट्ठे हुए हो तो साधु (त उज्जुय) उन प्राणियो के सामने (न गच्छिज्जा) न जावे किन्तु (जयमेव) यतनापूर्वक अन्य मार्ग से (परक्कमे) जावे जिससे उन प्राणियो के चुग्गा–पानी मे अन्तराय न पडे।।7।।

गोयरग्ग पविट्ठो य, न निसीइज्जा कत्थई।
कहं च न पबधिज्जा, चिट्ठित्ताण व सजए।।8।।

अन्वयार्थ- (गोयरग्ग पविट्ठो य) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) साधु (कत्थई) कही पर भी (न) न (निसीइज्जा) बैठे (च) और (चिट्ठित्ताण व) खडा रहकर भी (कह) कथा वार्ता (न) न (पबधिज्जा) कहे।। 8।।

भावार्थ– गोचरी हेतु गया हुआ मुनि किसी गृहस्थ के घर भिक्षा की गवेषणा के अतिरिक्त अन्य बातचीत आदि न करे। गृहस्थ के घर पर खडे–खडे भी विशेष वार्ता करना साधु के दोष का कारण है।

अग्गलं फलिह दारं, कवाडं वावि सजए
अवलंबिया न चिट्ठिज्जा, गोयरग्ग गओ मुणी।। 9।।

अन्वयार्थ– (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) छ काय के जीवो की रक्षा करने वाला सयती (मुणी) मुनि (अग्गल) आगल-भोगल को (फलिह) परिध अर्थात् दोनो किवाडो को रोक रखने वाले काठ को, होडा को (दार) दरवाजे को (वावि) अथवा (कवाड) किवाड को (अवलबिया) पकडकर या सहारा लेकर (न चिट्ठिजा) खडा न रहे क्योकि इस प्रकार खडे रहने से आत्मविराधना एव सयमविराधना होने की सभावना रहती है।।9।।

समणं माहणं यावि, किविणं वा वणीमगं।
उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए।।10।।
तमइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खु गोयरे।
एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए।।11।।

अन्वयार्थ– (समण) श्रमण (वावि) अथवा (माहण) ब्राह्मण (किविण) कृपण (वा) अथवा (वणीमगं) भिखारी आदि (भत्तट्ठापाणट्ठाए) अन्न–पानी के लिए (उवसकमत) गृहस्थ के द्वार पर खडे हो तो (सजए) संयमी साधु (तं) उनको (अइक्कमित्तु) लाघकर (न पविसे) गृहस्थ के घर मे न जावे और (चक्खुगोयरे) जहां पर उस दाता की और भिखारियां की दृष्टि पडती हो वहा पर भी (न चिट्ठे) खडा न रहे किन्तु (सजए) वह संयती साधु (एगत) एकान्त स्थान मे जहा पर उनकी दृष्टि न पडती हो (तत्थ) वहा (अवक्कमित्ता) जाकर (चिट्ठिज्ज) यतनापूर्वक खडा रहे।।10–11।।

वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा।
अप्पत्तियं सिया हुज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा।।12।।

अन्वयार्थ– उन्हे उल्लघन करके जाने से या उनके सामने खडे रहने से (सिया) शायद (तस्स) उस (वणीमगस्स) याचक को (वा) अथवा (दायगस्स) दाता को (वा) अथवा (उभयस्स) दाता और याचक दोनो को (अप्पत्तियं) अप्रीति– द्वेष उत्पन्न होगा (वा) और (पवयणस्स) प्रवचन की- जिनशासन की (लहुत्त) लघुता (हुज्जा)

होगी, अत उन्हे उल्लघन करके गृहस्थ के घर मे जाना साधु का कल्प नही है।।12।।

पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए।
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए।।13।।

अन्वयार्थ– (दिन्ने) उन याचको को भिक्षा देने पर (वा) अथवा (पडिसेहिए) दाता के निषेध कर देने पर (तम्मि) जब वे याचक (तओ) गृहस्थ के घर से (नियत्तिए) लौटकर चले जाय तब (सजए) साधु (भत्तट्ठापाणट्ठाए व) आहार–पानी के लिए वहा (उवसकमिज्ज) जावे।।13।।

उप्पल पउमं वावि, कुमुयं वा मगदतिय।
अन्नं वा पुप्फ सच्चित्त, त च संलुचिया दए।।14।।
तं भवे भत्तपाण तु, संजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।15।।
उप्पलं पउमं वावि, कुमुयं वा मगदतियं।
अन्न वा पुप्फ सच्चित्त, तं च समद्दिया दए।।16।।
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस।।17।।

अन्वयार्थ– (उप्पल) नीलोत्पल- नीला कमल (वावि) अथवा (पउम) पद्म- लाल कमल (कुमुय) चन्द्रविकासी सफेद कमल (वा) अथवा (मगदतिय) मालती-मोगरे का फूल (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार का दूसरा कोई (पुप्फ) फूल (सच्चित्त) जो सचित्त हो (त) उसको (सलुचिया) छेदन–भेदन करके (वा) अथवा (समद्दिया) पैरो आदि से कुचलकर अथवा सघट्टा करके (दए) आहार–पानी दे तो साधु दाता से कहे कि ऐसा आहार–पानी मुझे नही कल्पता है। 'त भवे' का शब्दार्थ पूर्ववत् है।।14–15–16–17।।

सालुय वा विरालिय, कुमुयं उप्पल नालियं।
मुणालिय सासवनालियं, उच्छुखंड अनिव्वुडं।।18।।

तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा।
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमग परिवज्जए।।19।।

अन्वयार्थ– (सालुय) कमल का मूल (विरालिय) पलास का कन्द (कुमुय) चन्द्रविकासी सफेद कमल (उप्पल नालिय) कमल नाल (मुणालिय) कमल तन्तु (सासवनालिय) सरसो की भाजी या नाल (वा) अथवा (उच्छुखड) ईख के टुकडे- गडेरी, ये सब पदार्थ यदि (अनिव्वुड) शस्त्र परिणत न हो तो साधु ग्रहण न करे तथा (रुक्खस्स) वृक्ष के (वा) अथवा (तणगस्स) तृण के'(अन्नस्स वावि) अथवा इसी प्रकार की दूसरी किसी भी (हरियस्स) हरित काय के (तरुणग) कच्चे पत्ते (वा) अथवा (पवाल) कच्ची कोपल आदि (आमग) जो सचित्त हो तो उन्हे (परिवज्जए) साधु ग्रहण न करे।।18–19।।

तरुणिय वा छिवाडिं, आमियं भज्जिय सइ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं।।20।।

अन्वयार्थ– (तरुणियं) जिसके बीज नहीं पके हैं ऐसी (छिवाडि) मूग आदि की फली जो (आमिय) कच्ची हो (वा) अथवा (सइ) एक बार की (भज्जियं) भुनी हुई हो जिसमें पक्वापक्व–मिश्र की शका हो, ऐसी फली यदि कोई साधु को देने लगे तो (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का पदार्थ (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है।।20।।

तहा कोलमणुस्सिन्नं, वेलुयं कासवनालियं।
तिल पप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए।।21।।

अन्वयार्थ– (तहा) इसी प्रकार (अणुस्सिन्न) अग्नि आदि से बिना पकाया हुआ (कोल) कोल–बोरकूट (वेलुय) वश करेला (कासवनालिय) श्रीपर्णी का फल (तिलपप्पडग) तिल पापडी (नीम) नीम का फल–नींबोली ये सब यदि (आमग) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हे ग्रहण न करे।।21।।

तहेव चाउल पिट्ठ, वियडे वा नत्तऽनिव्वुड।
तिल पिट्ठ पूइ पिन्नाग, आमगं परिवज्जए।।22।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (चाउल) चावलो का तथा गेहू आदि का (पिट्ठ) तत्काल का पीसा हुआ आटा (वा) अथवा (तत्तऽनिव्वुड) पहले गरम किया हुआ किन्तु मर्यादा उपरात हो जाने के कारण ठण्डा होकर जो सचित्त हो गया है अथवा मिश्रित एव अपक्व (वियड) जल (तिलपिट्ठ) तिलकूटा (पूइपिन्नाग) सरसो की खल– ये सब यदि (आमग) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हे ग्रहण न करे।।22।।

भावार्थ–पानी पूरा गरम होने के पश्चात् वर्षाकाल मे 3 प्रहर, शीतकाल मे 4 प्रहर तथा गरमी मे 5 प्रहर तक अचित्त रहता है, ऐसा व्याख्या ग्रन्थो मे बताया है। इतनी कालमर्यादा के उपरान्त पुन सचित्त होने की सका रहती है।

कविट्ठ माउलिंग च, मूलग मूलगत्तिय।
आम असत्थपरिणयं, मणसा वि न पत्थए।।23।।

अन्वयार्थ– (कविट्ठ) कविठ फल (माउलिग) मातुलिग–बिजौरा (मूलग) मूला (च) और (मूलगत्तिय) मूले के टुकडे– ये सब यदि (आम) सचित्त हो (असत्थपरिणय) सम्यक् प्रकार से शस्त्र से परिणत न हुए हो तो साधु इन पदार्थो की (मणसा वि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे।

तहेप फलमंथूणि, बीयमथूणि जाणिया।
बिहेलग पियाल च, आमगं परिवज्जए।।24।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (फलमथूणि) बोर आदि फलो का चूर्ण, (बीयमथूणि) बीजो का चूर्ण, (बिहेल) बहेडा (च) और (पियाल) रायण का फल– इन सबको (आमग) सचित्त (जाणिया) जानकर साधु इन्हे (परिवज्जए) वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे।।24।।

समुयाण चरे भिक्खू, कुलं मुच्चावयं सया।
नीयं कुलमइक्कम्म, ऊसढं नाभिधारए।।25।।

अन्वयार्थ— (भिक्खू) साधु (सया) हमेशा (उच्चावय) ऊच और नीच अर्थात् धनवान् और गरीब (कुल) कुल—घर मे (समुयाण) सामुदानिक रूप से (चरे) गोचरी जावे किन्तु (नीय) गरीब (कुल) कुल—घर को (अइक्कम्म) लाघ कर (ऊसढ) धनवान् के घर पर (नाभिधारए) न जावे।।25।।

भावार्थ— श्रीमन्त हो या गरीब हो, किन्तु साधु उन दोनो को समान दृष्टि से देखे और समान भाव से प्रत्येक प्रतीति वाले कुल मे गोचरी के लिए जावे।

अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीइज्ज पंडिए।
अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायण्णे एसणारए।।26।।

अन्वयार्थ— (मायण्णे) आहार—पानी की मात्रा को जानने वाला (एसणारए) आहार की शुद्धि मे तत्पर (पडिए) बुद्धिमान साधु (भोयणम्मि) भोजन मे (अमुच्छिओ) गृद्धि भाव न रखता हुआ तथा (अदीणो) दीनता न दिखलाता हुआ (वित्ति) गोचरी की (एसिज्जा) गवेषणा करे, यदि ऐसा करते हुए कदाचित् भिक्षा न मिले तो (न विसीइज्ज—न विसीएज्ज) खेद नहीं करे।।26।।

बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइमं साइमं।
न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो न वा।।27।।

अन्वयार्थ— (परघरे) गृहस्थ के घर मे (खाइम) खादिम— बादाम, पिस्ता आदि मेवा और (साइम) स्वादिम— लौग, इलायची आदि (विविह) अनेक प्रकार के (बहु) बहुत—से (अत्थि) पदार्थ होते हैं। यदि गृहस्थ साधु को वे पदार्थ न देवे तो (पडिओ) बुद्धिमान् साधु (तत्थ) उस गृहस्थ पर (न कुप्पे) क्रोध न करे परन्तु ऐसा विचार करे कि (परो) यह गृहस्थ है (इच्छा) इसकी इच्छा हो तो (दिज्ज) देवे (वा) अथवा इच्छा न हो तो (न) न देवे।।27।।

सयणासण वत्थ वा भत्तं पाण व सजए।
अदितस्स न कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ।।28।।

अन्वयार्थ– (सयण) शय्या (आसण) आसन (वत्थ) वस्त्र (वा) अथवा (भत्त) आहार (व) और (पाण) पानी जो चाहे (पच्चक्खेविय) सामने रखे हुए (दीसओ) दिखाई देते हो फिर भी गृहस्थ (अदितस्स) यदि उन पदार्थों को न दे तो भी (सजए) साधु (न कुप्पिज्जा) उस पर क्रोध न करे क्योकि दे या न दे– गृहस्थी की मरजी है।।28।।

इत्थियं पुरिस वा वि, डहरं वा महल्लग।
वदमाण न जाइज्जा, नो य ण फरुस वए।।29।।

अन्वयार्थ– (वदमाण) वन्दना करते समय (इत्थिय) किसी भी स्त्री (वावि) अथवा (पुरिस) पुरुष (डहर) बालक (वा) अथवा (महल्लग) वृ, से (न जाइज्जा) साधु किसी प्रकार की याचना न करे (यद्धण) तथा आहार न देने वाले गृहस्थ को (फरुस) कठोर वचन भी (नो वए) न कहे।। 29।।

जे न वंदे न से कुप्पे, वंदिओ न समुक्कसे।
एवमन्नेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ ।। 30।।

अन्वयार्थ– (जे) जो गृहस्थ (न वदे) साधु को वन्दना न करे (से) उस पर (न कुप्पे) क्रोध न करे और (वदिओ) चाहे राजा-महाराजा आदि वन्दना करते हो तो (न समुक्कसे) अभिमान भी न करे कि देखो । मै कैसा माननीय हू जो राजा-महाराजा भी मेरे चरणो मे गिरते है (एव) इस प्रकार (अन्नेसमाणस्स) अन्नादि की एषणा करते हुए मुनि का (सामण्ण) साधुत्व चारित्र (अणुचिट्ठइ) निर्मल रहता है।।30।।

भावार्थ– चाहे कोई अत्यन्त भक्तिभाव से बहराए या उपेक्षा भाव दिखाए, साधु को दोनो के प्रति समान दृष्टि रखना चाहिए।

सिया एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहइ।
मामेयं दाइय संतं, दट्ठूणं सयमायए।।31।।

अन्वयार्थ– (सिया) यदि कदाचित् (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रसलोलुपी साधु (लद्धु) सरस आहार मिलने पर (लोभेण) खाने के लोभ से (विणिगूहइ) उसे छिपा लेवे, नीरस वस्तु को ऊपर रखकर सरस वस्तु को नीचे दबा देवे और यह सोचे कि (मामेय) कहीं ऐसा न हो कि मै इस आहार को (दाइय सत) गुरु महाराज को दिखलाऊ, तो (दट्ठूण) इस सरस आहार को देखकर (सयमायए) वे स्वय सब–का–सब ले लेवे, मुझे कुछ भी न दे।।31।।

अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो, बहुं पावं पकुव्वइ।
दुत्तोसओ य सो होइ, निव्वाणं च न गच्छइ।।32।।

अन्वयार्थ– (अत्तट्ठागुरुओ) केवल अपना पेट भरने मे लगा हुआ (लुद्धो) रसलोलुपी (सो-से) साधु (बहु) बहुत (पाव) पाप (पकुव्वइ) उपार्जन करता है (य) और सदा (दुत्तोसओ) असन्तोषी (होइ) बना रहता है (च) ऐसा साधु (निव्वाण) मोक्ष (न गच्छइ) प्राप्त नही कर सकता।।32।।

सिया एगइओ लद्धुं, विविहं पाण भोयणं।
भद्दग भद्दगं भोच्चा, विवन्न विरसमाहरे।।33।।

अन्वयार्थ– (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रसलोलुपी साधु (सिया) कदाचित् ऐसा भी करे कि (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार–पानी को (लद्धु) प्राप्त करके उसमे से (भद्दग भद्दग) अच्छे–अच्छे सरस आहार को (भोच्चा-भुच्चा) वहीं कही पर एकान्त स्थान मे खाकर, बाकी बचा हुआ (विवन्न) विवर्ण और (विरस) नीरस आहार (आहरे) अपने स्थान पर लावे।।33।।

जाणंतु ता इमे समणा, आययट्ठी अयं मुणी।
संतुट्ठो सेवए पंतं, लूहवित्ती सुत्तोसओ।।34।।

अन्वयार्थ– (ता) अच्छे-अच्छे सरस आहार को मार्ग मे ही खा जाने वाला रसलोलुपी साधु ऐसा विचार करता हे कि (इमे) स्थानक मे रहे हुए (समणा) साधु इस रूखे–सूखे आहार को देखकर

(जाणतु) ऐसा जाने कि (अय) यह (मुणी) साधु (सतुट्ठो) बडा सतोषी और (आययट्ठी) बडा आत्मार्थी है इसीलिए (लूहवित्ती) सरस आहार की आकाक्षा नही करता किन्तु (सुतोसओ) जैसा आहार मिलता है उसी मे सन्तोष करता है और (पत) अन्त–पन्त नीरस आहार का (सेवए) सेवन करता है।।34।।

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माणकामए।
बहुं पसवई पाव, मायासल्लं च कुव्वइ।।35।।

अन्वयार्थ– इस प्रकार छल–कपट से (पूयणट्ठा) पूजा को चाहने वाला (जसोकामी) यश की कामना करने वाला और (माणसम्माणकामए) मान–सम्मान का अभिलाषी वह रसलोलुपी साधु (बहु) बहुत (पाव) पाप (पसवई) उपार्जन करता है (च) और (मायासल्ल) माया रूपी शल्य का (कुव्वइ) सेवन करता है।।35।।

सुरं वा मेरगं वावि, अन्न वा मज्जगं रस।
ससक्खं न पिबे भिक्खू, जसं सारक्खमप्पणो।।36।।

अन्वयार्थ– (अप्पणो) अपने (जस) सयम रूप निर्मल यश की (सारक्ख) रक्षा करने वाला (भिक्खू) साधु (ससक्ख) त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ भगवान् की साक्षी से (सुर) जौ आदि के आटे से बनी हुई मदिरा (वा) अथवा (मेरग) महुआ से बनी हुई मदिरा (वावि) अथवा (मज्जग) मद को उत्पन्न करने वाले (अन्न वा) दूसरे किसी भी (रस) रस को (न पिबे) न पीवे।।36।।

पियए एगओ तेणो, न मे कोइ वियाणइ।
तस्स पस्सह दोसाइं, नियडि च सुणेह मे।।37।।

अन्वयार्थ– (मे) मुझे (कोई) कोई भी (न) नही (वियाणइ) देखता है–ऐसा मानकर जो (तेणो) भगवान् की आज्ञा का लोप करने वाला चोर साधु (एगओ) एकान्त स्थान मे लुक–छिपकर (पियए) मदिरा पीता है (तस्स) उसके (दोसाइ) दोषो को (पस्सह)

देखो (च) और (मे) मै उसके (नियडि) मायाचार का वर्णन करता हू सो (सुणेह) तुम उसे सुनो।।37।।

वड्ढई सुडिया तस्स, माया मोसं च भिक्खुणो।
अयसो य अनिव्वाणं, सयय च असाहया।।38।।

अन्वयार्थ– (तस्स) मदिरापान करने वाले (भिक्खुणो) साधु की (सुडिया) आसक्ति (च) और (मायामोस) कपटपूर्वक मृषावाद (अयसो) अपयश (य) तथा (अनिव्वाण) अशाति आदि दोष (सयय) निरन्तर (वड्ढई) बढते रहते है, इस प्रकार वह (असाहुया) असाधुता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सयम से भ्रष्ट हो जाता है।।38।।

निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई।
तारिसो मरणंते वि, न आराहेइ संवरं।।39।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (तेणो) चोर (अत्तकम्मेहि) अपने किये हुए दुश्चरित्रो से (निच्चुव्विग्गो) हमेशा व्याकुल बना रहता है, उसी प्रकार (तारिसो) वह मदिरा पीने वाला (दुम्मई) दुर्बुद्धि साधु सदा व्याकुल एव भयभीत बना रहता है, उसके चित्त को कभी शान्ति नही मिलती, ऐसा साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म की (न आराहेइ) आराधना नही कर सकता।।39।।

आयरिए नाराहेइ, समणे आवि तारिसो।
गिहत्था वि णं गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं।।40।।

अन्वयार्थ– (तारिसो) वह मदिरा पीने वाला साधु (आयरिए) आचार्य महाराज तथा (समणे आवि) साधुओ की, किसी की भी (नाराहेइ) विनय–वैयावच्च आदि से आराधना नहीं कर सकता और ,(जेण) जब (गिहत्था) गृहस्थ लोग (ण) उस साधु के (तारिस) मदिरापान रूपी दुर्गुण को (जाणति) जान लेते है तब (वि) वे भी (गरिहति) उसकी निन्दा करते है।।40।।

एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए।
तारिसो मरणंते वि, नाराहेइ सवरं।।41।।

अनव्यार्थ– (एव तु) इरा प्रकार (अगुणप्पेही) अवगुणो को धारण करने वाला (च) और (गुणाण) ज्ञानादि गुणो को (विवज्जए–ओ) छोडने वाला (तारिसो) वह साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म की (नाराहेइ) आराधना नहीं कर सकता।।41।।

तव कुव्वइ मेहावी, पणीयं वज्जए रस।
मज्जप्पमायविरओ, तवंस्सी अइउक्कसो।।42।।

अन्वयार्थ– (मज्जप्पमायविरओ) मदिरापान रूप प्रमादादि दुर्गुणो से रहित (तवस्सी) तपस्वी (मेहावी) बुद्धिमान साधु (पणीय) स्निग्ध (रस) रसो को (वज्जए) छोडकर (अइउक्कसो) निराभिमानता पूर्वक (तव) तपस्या (कुव्वइ) करता है।।42।।

तस्स परस्सह कल्लाण, अणेग साहुपूइयं।
विउल अत्थ सजुत्तं, कित्तइस्स सुणेह मे।।43।।

अन्वयार्थ– गुरु शिष्यो से कहते है कि हे शिष्यो। (तस्स) उपरोक्त गुणो के धारक साधु का (कल्लाण) कल्याण सयम (अणेगसाहुपूइय) अनेक मुनियो द्वारा पूजित एव प्रशसित (विउल) महान् (अत्थसजुत्त) मोक्षरूपी अर्थ से युक्त होता है (परस्सह) तुम उसे देखो तथा (कित्तइस्स) मै उस साधु के गुणो का वर्णन करूगा। अत तुम (मे) मुझसे उन गुणो को (सुणेह) सुनो।।43।

एवं तु गुणप्पेही, अनुणाण च विवज्जए।
तारिसो मरणंते वि, आराहेइ संवरं।।44।।

अन्वयार्थ– (एवतु) इस प्रकार (गुणप्पेही-सगुणप्पेही) ज्ञानादि गुणो को धारण करने वाला (च) और (अगुणाण) दुर्गुणो को (विवज्जए ओ) छोडने वाला (तारिसो) साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक (सवर) ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म की (आराहेइ) भली

प्रकार आराधना करता रहता है अर्थात् मरणात कष्ट पडने पर भी वह ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म को नही छोडता।।44।।

आयरिए आराहेइ, समणे आवि तारिसो।
गिहत्था वि णं पूयंति, जेण जाणंति तारिस।।45।।

अन्वयार्थ– (तारिसो) उपरोक्त गुणो का धारक साधु (आयरिए) आचार्य महाराज की तथा (समणे आवि) दूसरे मुनियो की (आराहेइ) विनय–वैयावच्च द्वारा आराधना करता है और (जेण) जब (गिहत्था वि) गृहस्थ लोगो को भी (ण) उसके (तारिस) उन गुणो का (जाणति) पता लग जाता है तब वे (पूयति) उसकी भक्ति करते हे अर्थात् विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते है और उसके गुणो की प्रशसा करते है।।45।।

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे।
आयारभावतेणे य, कुव्वइ देवकिव्विसं।।46।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (नरे) साधु (तवतेणे) तप का चोर (वयतेणे) वचन का चोर (य) और (रूवतेणे) रूप का चोर (य) तथा (आयारभावतेणे) आचार और भाव का चोर होता है वह (देवकिव्विस) नीच जाति के किल्विषी देवो मे (कुव्वइ) उत्पन्न होता है।।46।।

लद्धूण वि देवत्तं, उववन्नो देवकिव्विसे।
तत्थावि से न याणाइ, किं मे किच्चा इमं फलं।।47।।

अन्वयार्थ– उपरोक्त चोर साधु (देवत्त) देवगति को (लद्धूण वि) प्राप्त करके भी (देवकिव्विसे) अस्पृश्य जाति के किल्विषी देवो मे (उववन्नो) उत्पन्न होता है। (तत्थावि) वहा पर भी (से) वह (न याणाइ) यह नही जानता कि (कि) मैने ऐसा कौनसा कर्म (किच्चा) किया है जिससे (मे) मुझे (इम) यह (फल) फल प्राप्त हुआ हे।।47।।

तत्तो वि से चइत्ताणं, लब्भइ एलमूयगं।
नरग तिरिक्ख जोणिं वा, बोही जत्थ सुदुल्लहा।।48।।

अन्वयार्थ– (से) वह किल्विषी देव (तत्तो वि) वहा से (चइत्ताण)

चवकर (एलमूयग) मूक- जो-बोल न सके ऐसे बकरे आदि की योनि को पाकर फिर (नारग) नरक गति को (वा) अथवा (तिरिक्खजोणि) तिर्यच योनि को पाकर फिर (नरग) नरक गति को (वा) अथवा (तिरिक्खजोणि) तिर्यच योनि को (लब्भिही–लब्भइ) प्राप्त होता है (जत्थ) जहा पर (बोहि) बोधि–जिनधर्म की प्राप्ति होना (सुदुल्लहा) बडा दुर्लभ है।।48।।

एय च दोस दट्ठूण, णायपुत्तेण भासिय।
अणु मायंपि मेहावी, मायामोस विवज्जए।।49।।

अन्वयार्थ– (एय च) इस प्रकार (दोस) पूर्वोक्त दोषो को (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने (दट्ठूण) केवलज्ञान को देखकर (भासिय) फरमाया है अत (मेहावी) बुद्धिमान् साधु (अणुमायपि) अणुमात्र भी (मायामोस) कपटपूर्ण असत्य भाषण को (विवज्जए) वर्जे, किचिन्मात्र भी माया-मृषावाद का सेवन न करे।।49।।

सिक्खिऊण भिक्खेसण सोहि, सजयाण बुद्धाण सगासे।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिंदिए, तिव्वलज्ज गुणव विहरिज्जासि
।।50।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (सुप्पणिहि इदिए–सुप्पणिहिदिए) जितेन्द्रिय एव एकाग्रचित्त वाला (तिव्वलज्ज) अनाचार से अत्यन्त लज्जा रखने वाला (गुणव) गुणवान् (भिक्खु-भिक्खू) साधु (बुद्धाण) तत्त्व को जानने वाले (सजयाण) साधुओ के (सगासे) पास (भिक्खेसणसोहि) भिक्षा मे गवेषणा आदि की शुद्धि की विधि (सिक्खिऊण) सीखकर (तत्थ) एषणा समिति मे जितेन्द्रिय एव लज्जावन्त होकर (विहरिज्जासि) उपयोगपूर्वक विचरे।।50।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।



'महाचार कथा' नामक छट्ठा अध्ययन

नाणदंसणसपन्न, संजमे य तवे रयं।
गणिमागमसंपन्न, उज्जाणम्मि समोसढं।।1।।
रायाणो रायमच्चा य, माहणा अदुव खत्तिया।
पुच्छंति निहुअप्पाणो, कहं भे आयारगोयरो।।2।।

अन्वयार्थ– (नाणदसणसपन्न) एक समय सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन के धारी (सजमे) सतरह प्रकार के सयम मे (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रय) रत (आगमसपन्न) आचाराङ्गादि अङ्गोपाङ्ग रूप आगम के ज्ञाता (गणि) छत्तीस गुणो के धारक आचार्य महाराज (उज्जाणम्मि) गाव के समीप के बगीचे मे (समोसढ) पधारे तब (रायाणो) राजा (य) और (रायमच्चा) राज-मत्री (माहणा) ब्राह्मण (अदुव) और (खत्तिया) क्षत्रिय (निहुअप्पाणो) मन की चचलता को छोडकर भक्ति और विनयपूर्वक (पुच्छति) उन से पूछते हैं कि हे भगवन्! (भे) आप लोगो का (आथार गोयरो) आचार और गोचर भिक्षावृत्ति आदि धर्म (कहं) किस प्रकार का है।।1–2।।

तेसिं सो निहुओ दंतो, सव्वभूयसुहावहो।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आयक्खइ वियक्खणो।।3।।

अन्वयार्थ– (निहुओ) चचलतारहित प्रशान्त (दतो) इन्द्रियो के दमन करने वाले (सव्वभूयसुहावहो) सब प्राणियो को सुख पहुँचाने वाले अर्थात् किसी को कष्ट न देने वाले (सिक्खाए) ग्रहण आसेवन

रूप शिक्षा से (सुसमाउत्तो) सुसपन्न (वियक्खणो) विचक्षण- धर्मोपदेश मे कुशल (सो) वे आचार्य महाराज (तेसि) उन राजा आदि को (आयक्खइ) जैन साधुओ का आचार– गोचर रूप धर्म कहते है अर्थात् उनके प्रश्न का उत्तर देते है।।3।।

हदि धम्मत्थकामाण, निग्गथाण सुणेह मे।
आयारगोयर भीम, सयल दुरहिट्ठिय।।4।।

अन्वयार्थ– (हदि) हे देवानुप्रियो ! (धम्मत्थकामाण) धर्म-श्रुत–चारित्र रूप धर्म और अर्थ- मोक्ष के लिए अभिलाषी (निग्गथाण) निर्ग्रन्थ मुनियो का (सयल) समस्त (आयारगोयर) आचार–गोचर जो कि (भीम) कर्म रूपी शत्रुओ के लिए भयकर है तथा (दुरहिट्ठिय) जिसे धारण करने मे कायर पुरुष घबराते है, ऐसे आचार–गोचर का (मे) मै वर्णन करता हू अत (सुणेह) तुम सावधान होकर सुनो।।4।।

नन्नत्थ एरिस वुत्त, ज लोए परम दुच्चरं।
विउलट्ठाणभाइस्स, न भूयं न भविस्सइ।।5।।

अन्वयार्थ– (विउलट्ठाणभाइस्स) विपुल स्थान मोक्ष मार्ग के आराधक मुनियो का (एरिस) इस प्रकार का उन्नत आचार (अन्नत्थ) जिन–शासन के अतिरिक्त अन्य मतो मे (न वुत्त) कही भी नहीं कहा गया है (ज) जो (लोए) लोक मे (परमदुच्चर) अत्यन्त दुष्कर है अर्थात् जिसका पालन करना बहुत कठिन है। जिन–शासन के सिवाय अन्य मतो मे ऐसा आचार (न भूय) न तो गत काल मे कही हुआ है और (न भविस्सइ) न आगामी काल मे कही होगा और न वर्तमान काल मे कही है।।5।।

सखुड्डगवियत्ताण, वाहियाण च जे गुणा।
अखंड फुडिया कायव्वा, तं सुणेह जहा तहा।।6।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (गुणा) गुण (सखुड्डगवियत्ताण) बालक एव वृद्धो को (वाहियाण च) स्वस्थ एव अस्वस्थ सभी को

अवस्थाओं में (अखंड फुडिया) अखंड एवं निर्दोष रूप से अर्थात् देश विराधना और सर्व विराधना से रहित (कयव्वा) धारण करने चाहिए, उन गुणों का (जहा) जैसा स्वरूप है (तहा) वैसा ही मैं वर्णन करता हूं (सुणेह) अतः तुम सावधान होकर सुनो ।।6।।

दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालोऽवरज्झई।
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताउ भस्सइ।।7।।

अन्वयार्थ– (दस अट्ठ य) साधु के आचार के अठारह (ठाणाइं) स्थान हैं। (बालो) जो बाल-अज्ञानी साधु (जाइं) इन (निश्चय) अठारह स्थानों में से (अन्नयरे) किसी एक भी (ठाणे) स्थान की (अवरज्झइ) विराधना करता है वह (निग्गंथत्ताउ-निर्ग्रंथत्ताओ) साधुत्व से (भस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है।।7।।

वय छक्कं काय छक्कं, अकप्पो गिहि भायणं।
पलियंक निसज्जा य, सिणाणं सोह वज्जणं।।8।।

अन्वयार्थ– (वयछक्कं) छः व्रत अर्थात् प्राणातिपात विरमण आदि पांच महाव्रत और छठा रात्रिभोजन त्याग रूप छः व्रतों का पालन करना (कायछक्कं) छःकाय अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय– इन छःकाय जीवों की रक्षा करना (अकप्पो) अकल्पनीय पदार्थों को ग्रहण न करना, (गिहिभायण) गृहस्थ के बर्तन में भोजनादि न करना, (पलियंक) पलंग पर न बैठना, (निसज्जा-निसिज्जा-निसेज्जा) गृहस्थ के घर में न बैठना, (सिणाणं) स्नान (य) तथा (सोहवज्जणं) शरीर की शोभा का त्याग करना, साधु के ये अठारह स्थान हैं।।8।।

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो।।9।।

अन्वयार्थ– (सव्वभूएसु) प्राणी मात्र पर (संजमो) दया रूप (अहिंसा) अहिंसा (निउणा) अनन्त सुखों को देने वाली है, ऐसा

(महावीरेण) भगवान् महावीर ने (दिट्ठा) केवलज्ञान मे देखा है। इसीलिए भगवान् ने (तत्थ) उपरोक्त अठ्ठारह स्थानो मे (इम) इस अहिसा व्रत को (पढम) पहला (ठाण) स्थान (देसिय) कहा है।।9।।

जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा, न हणे णो वि घायए।।10।।

अन्वयार्थ– (लोए) चौदह राजू परिमाण लोक मे (जावति) जितने (तसा) त्रस (अदुव) अथवा (थावरा) स्थावर (पाणा) प्राणी हैं (ते) उनको (जाण) जानकर (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से– प्रमादवश (न हणे) स्वय मारे नही (णो वि) और न दूसरो से (घायए) घात ही करावे, इसी प्रकार मारने वाले की अनुमोदना भी न करे।।10।।

हिसा क्यो न करनी चाहिए इसके लिए सूत्रकार कहते है कि–

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति ण।।11।।

अन्वयार्थ– (सव्वे वि) त्रस–स्थावर आदि सभी (जीवा) जीव (जीविउ) जीना (इच्छति) चाहते है लेकिन (न मरिज्जिउ) मरना कोई भी नहीं चाहता (तम्हा) इसीलिए (निग्गथा) छ काया के रक्षक निर्ग्रन्थ साधु (ण) उस (घोर) महा भयकर (पाणिवह) प्राणिवध- जीव हिसा का (वज्जयति) सर्वथा त्याग करते है।।11।।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया, नो वि अन्नं वयावए।।12।।

अन्वयार्थ– साधु (अप्पणट्ठा) अपने खुद के लिए (वा) अथवा (परट्ठा) दूसरो के लिए (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा मान, माया, लोभ से (जइवा) अथवा (भया) भय से (हिसग) पर पीडाकारी, जिससे दूसरो को दु ख पहुचे, ऐसा (मुस) झूठ (न बूया) स्वय न बोले (नो

वि) ओर न (अन्न) दूसरो से (वयावए) बोलावे तथा झूठ बोलने वालो का अनुमोदन भी न करे।।12।।

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्वसाहूहि गरिहिओ।
अविस्सासो य भूयाण, तम्हा मोस विवज्जए।।13।।

अन्वयार्थ– (लोगम्मि) ससार मे (सव्वसाहूहि) सव महापुरुषो ने (मुसावाओ) असत्य भाषण को (गरिहिओ) निन्दित वतलाया हे (य) क्योकि असत्य भाषण (भूयाण) सब प्राणियो के लिए (अविस्सासो) अविश्वसनीय है अर्थात् असत्यवादी का कोई विश्वास नही करता (तम्हा) इसलिए (मोस) मृषावाद का (विवज्जए) त्याग सर्वथा कर देना चाहिए।।13।।

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहु।
दंतसोहणमित्तं पि, उग्गह सि अजाइया।।14।।
तं अप्पणा न गिण्हंति, नो वि गिण्हावए पर।
अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणुजाणंति सजया।।15।।

अन्वयार्थ– (चित्तमत) सचेतन-शिष्यादिक हो (वा) अथवा (अचित्त) अचेतन वस्त्र–पात्रादिक हो, (बहु) बहुमूल्य पदार्थ हो (जइ वा) अथवा (अप्प) अल्प मूल्य वाला पदार्थ हो, यहा तक कि (दतसोहणमित्त पि) दात कुरेदने का तिनका भी हो, (सजया) साधु (सि-से) उस वस्तु के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) मागे बिना (त) उस पदार्थ को (अप्पणा) आप स्वय (न गिण्हति) ग्रहण नही करते (नो वि) और न (पर) दूसरे से (गिण्हावए) ग्रहण करवाते है (वा) और (गिण्हमाण पि) ग्रहण करते हुए (अन्न) दूसरो को (नाणुजाणति) भला भी नही समझते।।14-15।।

अबंभचरिय घोर, पमायं दुरहिट्ठियं।
नायरंति मुणी लोए, भेयाययण वज्जिणो।।16।।

अन्वयार्थ– (लोए) लोक मे (भेयाययण वज्जिणो) चारित्र का भग करने वाले स्थानो को वर्जने वाले पापभीरु (मुणी) मुनि (घोर) नरकादि दुर्गतियो मे डालने वाला अतएव भयकर (पमाय) प्रमाद को पैदा करने वाला (दुरहिट्ठिय) परिणाम मे दु खदायी (अबभचरिय) अब्रह्मचर्य का (नाययति) कदापि सेवन नही करते।।16।।

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सय।
तम्हा मेहुणससग्ग, निग्गंथा वज्जयति ण।।17।।

अन्वयार्थ– (एय) यह अब्रह्मचर्य (अहम्मस्स) अधर्म का (मूल) मूल है और (महादोससमुस्सय) महादोषो का समूह है (तम्हा) इसीलिए (निग्गथा) निर्ग्रन्थ साधु (मेहुण ससग्ग) मैथुन के ससर्ग को (ण) सर्वथा प्रकार से (वज्जयति) छोडते है।।17।।

बिडमुब्भेइम लोण, तिल्ल सप्पिं च फाणिय।
न ते सनिहिमिच्छंति, णायपुत्तवओरया।।18।।

अन्वयार्थ– (णायपुत्तवओरया) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो मे जो रत रहते है (ते) वे मुनि (बिड–विड) बिड लवण (उब्भेइम) सामुद्रिक (लोण) लवण (तिल्ल) तेल (सप्पि) घी (च) और (फाणिय) गीले गुड आदि पदार्थो का (सनिहि) सग्रह करना– रात्रि मे बासी रखना (न इच्छति) नहीं चाहते।।18।।

भावार्थ– भगवान् की आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले मुनि अशनादि किसी पदार्थ का सग्रह करना तो दूर रहा किन्तु सग्रह करने की इच्छा तक नही करते।

लोहस्सेस अणुप्फासे, मन्ने अन्नयरामवि।
जे सिया संनिहिकामे, गिही पव्वइए न से।।19।।

अन्वयार्थ– (एस) यह सन्निधि–सग्रह (लोहस्स) लोभ का (अणुप्फासे) अनुस्पर्श-प्रभाव है, अत (मन्ने) तीर्थकर देव ऐसा मानते है अथवा तीर्थकर और गणधरो ने ऐसा कहा है कि (सिया) यदि

कदाचित् किसी भी समय (जे) जो साधु (अन्नयरामवि) किंचिन्मात्र भी (सन्निहि) सग्रह करना तो दूर रहा किन्तु सग्रह करने की (कामे) इच्छा करता है तो (से) वह (न पव्वइए) साधु नहीं किन्तु (गिही) गृहस्थ हे।।19।।

जं पि वत्थं व पाय वा, कबल पायपुंछण।
तं पि संजमलज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य।।20।।

अन्वयार्थ— यदि कोई यह शका करे कि साधु वस्त्र, पात्र आदि वस्तुए अपने पास रखते हे तो क्या ये वस्तुए सग्रह या परिग्रह नही है ? इसका समाधान किया जाता है कि (ज पि) साधु लोग जो (वत्थ) वस्त्र (व) अथवा (पाय) पात्र (कबल) कम्बल (वा) अथवा (पायपुछण) रजोहरण आदि शास्त्रोक्त सयम के उपकरण (धारति) धारण करते है (य) ओर (परिहरति) अनासक्ति भाव से उनका उपभोग करते हैं (तपि) वह (सजमलज्जट्ठा) केवल सयम की रक्षा के लिए और लज्जा के लिए ही करते है।।20।।

न सो परिग्गहो वुत्तो, णायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा।।21।।

अन्वयार्थ— वस्त्र–पात्रादि रखने से साधु को परिग्रह दोष क्यो नही लगता ? इसका समाधान किया जाता है (ताइणा) प्राणीमात्र के रक्षक (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने (सो) अनासक्ति भाव से वस्त्र–पात्रादि रखने को (परिग्गहो) परिग्रह (न वुत्तो) नही कहा है किन्तु (मुच्छा) मूर्च्छाभाव को ही अर्थात् किसी वस्तु मे आसक्ति रखने को ही (परिग्गहो) परिग्रह (वुत्तो) कहा हे और (इइ-इय) ऐसा ही (महेसिणा) महर्षि गणधर देव ने अथवा सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी से (वुत्त) कहा है।।21।।

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खणपरिग्गहे।
अवि अप्पणो वि देहम्मि, नायरंति ममाइयं।।22।।

अन्वयार्थ– (बुद्धा) तत्त्वज्ञ मुनि (सव्वत्थुवहिणा) सयम के सहायभूत वस्त्र–पात्रादि उपकरणो को (सरक्खणपरिग्गहे) एकमात्र सयम की रक्षा के लिए ही रखते है किन्तु मूर्च्छाभाव से नहीं (अवि) और विशेष तो क्या वे तो (अप्पणो वि) अपने (देहम्मि) शरीर पर भी (ममाइय) ममत्व भाव (नायरति) नही रखते।।22।।

अहो निच्चं तवोकम्मं सव्वबुद्धेहि वण्णिय।
जा य लज्जासमा वित्ती, एगभत्तं च भोयणं।।23।।

अन्वयार्थ– (सव्वबुद्धेहि) सभी ज्ञानी पुरुषो ने (वण्णिय) कहा है कि (अहो) अहो ! साधु पुरुषो के लिए यह कैसा (निच्च) नित्य (तवोकम्म) तप है (जाव–जाय) जो जीवनपर्यन्त (लज्जासमा) सयम निर्वाह के लिए (वित्ती) भिक्षावृत्ति करनी होती है और (एगभत्त) एक भक्त अर्थात् सिर्फ दिन मे ही (भोयण) आहार करना होता है और रात्रिभोजन का सर्वथा त्याग करना होता है।।23।।

भावार्थ– दो प्रकार के भक्त बताए गए है यथा दिवाभक्त व रात्रिभक्त। उसमे से मुनि एक भक्त अर्थात् दिन मे ही आहार ग्रहण करते है, रात्रि मे नहीं।

संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे।।24।।

अन्वयार्थ– (इमे) ये ससार मे बहुत–से (तसा) त्रस (अदुव) और (थावरा) स्थावर (पाणा) प्राणी (सुहुमा) इतने सूक्ष्म (सति) होते हैं (जाइ) जो (राओ) रात्रि मे (अपासतो) दिखाई नही देते तो फिर उनकी रक्षा करते हुए (एसणिय) आहार की शुद्ध एषणा और (चरे) भोजन करना (कहं) कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है।।24।।

उदउल्लं बीयसंसत्तं पाणा निवडिया महिं।
दिआ ताइं विवज्जिजज्जा, राओ तत्थ कहं चरे।।25।।

अन्वयार्थ– (महि) जमीन पर (उदउल्ल) पडा हुआ पानी अथवा सचित्त जलमिश्रित आहार (बीयससत्त) जमीन पर बिखरे हुए बीज अथवा सचित्त बीजादि से युक्त आहार (निवडिया) और जमीन पर रहे हुए (पाणा) कीडे-मकोडे आदि प्राणी (ताइ) इन सब को (दिआ) दिन मे तो (विवज्जिजज्जा) आखो से देखकर बचाया जा सकता है किन्तु (राओ) रात्रि मे (तत्थ) उनकी रक्षा करते हुए (कह) कैसे (चरे) चला जा सकता है।।25।।

भावार्थ– साधु के लिए रात्रिभोजन और रात्रिविहार दोनो का निषेध है।

एयं च दोसं दट्ठूणं, णायपुत्तेण भासिय।
सव्वाहारं न भुंजंति, निग्गंथा राइभोयणं।।26।।

अन्वयार्थ– (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के (भासिय) बतलाये हुए (एय) इन प्राणिहिसा रूप (च) तथा आत्मविराधना रूप (दोस) दोषो को (दट्ठूण) देख कर– जानकर (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (सव्वाहार) चार प्रकार के आहारो मे से किसी भी प्रकार का आहार (राइभोयण) रात्रि मे (न भुंजंति) नहीं करते।।26।।

पुढविकायं न हिंसति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया।।27।।

अन्वयार्थ– (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (संजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन और काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण-ण) योगो से और (करण) कृत–कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (पुढविकाय) पृथ्वीकाय की (न हिसति) हिसा नहीं करते, दूसरो से नहीं करवाते, करने वालो की अनुमोदना भी नहीं करते।।27।।

पुढविकायं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे।।28।।

अन्वयार्थ– (पुढविकाय) पृथ्वीकाय को (विहिसतो) हिसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे)

चक्षुओ द्वारा दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओ द्वारा नहीं दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिसई उ) हिसा कर देता है।।28।।

तम्हा एय वियाणित्ता दोस दुग्गइवड्ढणं।
पुढविकायसमारंभ, जावज्जीवाए वज्जए।।29।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (पुढविकायसमारभ) पृथ्वीकाय के समारभ का (जावज्जीवाए-जावज्जीवाइ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए।।29।।

आउकायं न हिसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया।।30।।

अन्वयार्थ– (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण) योगो से और (करण) तीन करण से (आउकाय) अप्काय की (न हिसति) हिसा नहीं करते, दूसरो से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते।।30।।

आउकायं विहिंसंतो, हिसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे।।31।।

अन्वयार्थ– (आउकाय) अप्काय की (विहिसतो) हिसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिसई उ) हिसा कर देता है।।31।।

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढणं।
आउकायसमारंभ, जावज्जीवाए वज्जए।।32।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (आउकायसमारभ) अप्काय के समारभ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए।।32।।

जायतेयं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए।
तिक्ख मन्नयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासयं।।33।।

अन्वयार्थ– साधु (जायतेय) अग्नि को (जलइत्तए) सुलगाने की (न इच्छति) कभी भी इच्छा न करे क्योकि वह (पावग) पापकारी है और (अन्नयर सत्थ) लोह के अस्त्र–शस्त्रो की अपेक्षा भी (तिक्ख) अधिक तीक्षण शस्त्र है (सव्वओ वि दुरासय) उसे सह लेना अत्यन्त दुष्कर है।। 33।।

पाईणं पडिणं वावि, उड्ढं अणु दिसामवि।
अहे दाहिणओ वावि, दये उत्तरओ वि य ।। 34।।

अन्वयार्थ– (पाईण) पूर्व (वावि) और (पडिणं) पश्चिम (दाहिणओ) दक्षिण (वावि) और (उत्तरओ वि) उत्तर दिशा मे (य) तथा (अणुदिसामवि) चारो विदिशाओ मे (उड्ढ) ऊची और (अहे) नीची दिशा मे अर्थात् दस दिशाओ मे रहे हुए जीवो को (दहे) यह अग्नि जला कर भस्म कर देती है।।34।।

भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ।
तं पईवपयावट्ठा, संजया किंचि नारंभे।।35।।

अन्वयार्थ– (एस) यह (हव्ववाहो) अग्नि (भूयाण) प्राणियो का (आघाओ) आघात स्वरूप है अर्थात् प्राणियो की घात करने वाली है (न संसओ) इसमे कुछ भी सदेह नहीं है। इसलिए (सजया) सयमी मुनि (त) उस अग्नि का (पईवपयावट्ठा) प्रकाश के लिए तथा शीत निवारण आदि कार्यो के लिए (किचि) किचित्मात्र भी (नारभे) आरम्भ नही करे।।35।।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइ वड्ढणं।
तेउकाय-समारंभ, जावज्जीवाए वज्जए।।36।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) उपरोक्त (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तेउकाय-समारभ) अग्निकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) जीवनपर्यन्त (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए।।36।।

अणिलस्स समारभं, बुद्धा मन्नंति तारिसं।
सावज्ज-बहुलं चेय, नेय ताईहि सेवियं।।37।।

अन्वयार्थ– (बुद्धा) तीर्थकर भगवान् (अणिलस्स) वायुकाय के (समारभ) आरम्भ को (तारिस) उसी प्रकार का अर्थात् अग्निकाय के आरम्भ जैसा (सावज्ज बहुल) अत्यन्त पापकारी (मन्नति) मानते हैं- केवलज्ञान द्वारा जानते है (एय च) इस कारण से (ताईहि) छ काय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) वायुकाय का समारम्भ (न सेविय) कदापि न करना चाहिए।।37।।

तालियंटेण पत्तेण, साहा विहुयणेण वा।
न ते वीइउमिच्छंति, वीयावेऊण वा परं।।38।।

अन्वयार्थ– (ते) वे छ काय जीवो के रक्षक मुनि (तालियटेण) ताल के पखे से (पत्तेण) पत्ते से (वा) अथवा (साहाविहुयणेण) वृक्ष की शाखा को हिलाकर (वीइउ) अपने ऊपर हवा करना (न) नहीं (इच्छति) चाहते (वा) और न (पर) दूसरे से (वीयावेऊण) हवा करवाना चाहते है तथा हवा करने वालो की अनुमोदना भी नहीं करते।।38।।

जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं।
न ते वायमुईरति, जयं परिहरंति य।।39।।

अन्वयार्थ– (ज पि) जो (वत्थ) वस्त्र (व) और (पाय) पात्र (कबल) कबल (वा) अथवा (पायपुछण) रजोहरण आदि सयमोपकरण

साधु के पास है उनसे भी (ते) वे (वाय) वायु की (न उईरति) उदीरणा नहीं करते (य) किन्तु (जय) यतनापूर्वक (परिहरति) धारण करते है जिससे वायुकाय की विराधना नही होती।।39।।

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण।
वाउकाय-समारंभं, जावज्जीवाए वज्जए।।40।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (वाउकाय–समारभ) वायुकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए -इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए।।40।।

वणस्सइ न हिसति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया।।41।।

अन्वयार्थ– (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण–जोएण) योगो से और (करण) कृत–कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (न हिसति) हिसा नहीं करते, दूसरो से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नहीं करते।।41।

वणस्सइं विहिसतो, हिसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे।।42।।

अन्वयार्थ– (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (विहिसतो) हिसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चक्षुओ द्वारा नही दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओ द्वारा नही दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिसई उ) हिसा कर देता है।।42।।

तम्हा एय वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढण।
वणस्सइ समारभं, जावज्जीवाए वज्जए।।43।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (वणस्सइ समारभ) वनस्पतिकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए।।43।।

तसकायं न हिसति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया।।44।।

अन्वयार्थ– (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण–जोएण) योगो से और (करण) तीन करण से (तसकाय) त्रसकाय की (न हिसति) हिसा नही करते, दूसरो से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते।।44।

तसकायं विहिसंतो, हिसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे।।45।।

अन्वयार्थ– (तसकाय) त्रसकाय को (विहिसतो) हिसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) नाना प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिसई उ) हिसा कर देता है।।45।।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइ वड्ढणं।
तसकायं समारभ, जावज्जीवाए वज्जए।।46।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तसकाय समारभ) त्रसकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए।।46।।

जाइं चत्तारिऽभुज्जाइं, इसिणाऽऽहार माइणि।
ताइं तु विवज्जंतो, संजमं अणुपालए।।47।।

अन्वयार्थ– (जाइ) जो (आहारमाइणि) आहार, शय्या, वस्त्र, पात्रादि (चत्तारि) चार पदार्थ (इसिणा) मुनियो के लिए (अभुज्जाइ-अभोज्जाइं) अकल्पनीय है (ताई) उनको (तु) निश्चय पूर्वक (विवज्जतो) त्यागता हुआ साधु (सजम) सयम का (अणुपालए) यथाविधि पालन करे।।47।।

पिंडं सिज्जं च वत्थं च चउत्थं पायमेव य।
अकप्पियं न इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं।।48।।

अन्वयार्थ– (पिड) आहार (च) और (सिज्ज) शय्या–उपाश्रय (च) तथा (वत्थ) वस्त्र (य) और (चउत्थ) चौथा (पायमेव) पात्र, ये यदि (अकप्पियं) अकल्पनीय हों तो साधु (न इच्छिज्जा) ग्रहण न करे और यदि (कप्पिय) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण कर सकता है।।48।।

जे नियागं ममायंति, कीयमुद्देसियाहडं।
वहं ते समणुजाणंति, इइ वुत्तं महेसिणा।।49।।

अन्वयार्थ– (नियाग) आमत्रित पिण्ड (कीय) साधु के लिए मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक साधु के निमित्त बनाये हुए और (आहड) साधु के निमित्त उसके सामने लाये हुए आहारादि को (जे) जो साधु (ममायति) ग्रहण करते है (ते) वे (वह) प्राणिवध-हिसा की (समणुजाणंति) अनुमोदना करते हैं (इइ-इय) इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर ने (वुत्त-उत्त) कहा है।।49।।

तम्हा असणपाणाइं, कीयमुद्देसियाहडं।
वज्जयंति ठिअप्पाणो, निग्गंथा धम्मजीविणो।।50।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (ठिअप्पाणो) सयम मे स्थिर आत्मा वाले (धम्मजीविणो) धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले

(निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (कीय) साधु के वास्ते मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक-साधु के निमित्त बनाये हुए और (आहड) साधु के निमित्त सन्मुख लाये हुए (असण-पाणाइ) आहार–पानी आदि को (वज्जयति) ग्रहण नही करते।।50।।

कसेसु कसपाएसु, कुडमोएसु वा पुणो।
भुंजंतो असणपाणाइं, आयारा परिभस्सइ।।51।।

अन्वयार्थ– जो साधु (कसेसु) गृहस्थ की कासी आदि की कटोरी मे (वा) अथवा (कसपाएसु) कासी आदि के थाल मे (पुणो) और (कुडमोएसु) मिट्टी के बरतन मे (असण-पाणाइ) आहार–पानी (भुजतो) भोगता है वह (आयारा) चारित्र धर्म से (परिभस्स्इ) भ्रष्ट हो जाता है।

सीओदग समारंभे, मत्तधोअण छड्डणे।
जाइ छनति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो।।52।।

अन्वयार्थ– जब साधु गृहस्थ के बर्तन मे भोजन करने लग जायगा तो (सीओदग समारभे) सचित्त जल का आरम्भ होगा– अर्थात् गृहस्थ उस बर्तन को कच्चे जल से धोवेगा उसमे अप्काय की हिसा होगी और (मत्तधोअण छड्डणे) बर्तनो को धोये हुए पानी को अयतनापूर्वक इधर–उधर गिराने मे (जाइ भूयाइ) बहुत से जीवो की (छनति– गींणणति-छिप्पति) हिसा हो– अत (तत्थ) गृहस्थ के बर्तन मे भोजन करने मे तीर्थकर देव ने केवलज्ञान द्वारा (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है।।52।।

पच्छाकम्मं पुरेकम्म, सिया तत्थ न कप्पइ।
एयमट्ठं न भुंजति, निग्गंथा गिहिभायणे।।53।।

अन्वयार्थ– (तत्थ) गृहस्थ के बर्तन मे भोजन
(पच्छाकम्म) पश्चात्कर्म और (पुरेकम्म) पुर कर्म दोष
की सभावना रहती है अत साधु को यह (न कप्पइ)

है (एयमट्ठ) इसलिए (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (गिहिभायणे) गृहस्थ के वर्तन मे (न भुजति) भोजन नही करते है।।53।।

आसदी पलिअंकेसु, मंचमासालएसु वा।
अणायरियमज्जाण, आसइत्तु सइत्तु वा।।54।।
नासंदी पलिअंकेसु, न निसिज्जा न पीढए।
निग्गथाऽपडिलेहाए, बुद्धवुत्त महिट्ठगा।।55।।

अन्वयार्थ— (आसदी पलिअकेसु) बेत आदि की कुर्सी और पलग पर (वा) अथवा (मचमासालएसु) खाट और आरामकुर्सी आदि पर (आसइत्तु) बैठना (वा) अथवा (सइत्तु) सोना (अज्जाण) साधुओ के लिए (अणायरिय) अनाचार रूप है इसलिए (बुद्धवुत्तमहिट्ठगा) तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाले (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनियो को चाहिये कि वे (न) न तो (आसदी पलिअकेसु) बेत आदि की कुर्सी और पलग पर बैठे और सोवे और (न) न (निसिज्जा-निसेज्जा) रुई की गद्दीसहित आसन पर और (न) न (पीढए) बेत के बने हुए आसन विशेष पर बैठे और सोवे क्योकि (अपडिलेहाए) इनकी पडिलेहणा होना कठिन है।।54–55।।

गंभीरविजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा।
आसंदी पलिअंको य, एयमट्ठं विवज्जिया।।56।।

अन्वयार्थ— (एए) कुर्सी—पलग आदि इन सब मे (गभीरविजया) उडे छिद्र होते है अत (पाणा) बेइन्द्रियादि प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) पडिलेहणा होना कठिन है (एयमट्ठ) अत मुनियो को (आसदी) कुर्सी (य) और (पलिअको) पलग आदि का (विवज्जिया) त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन आसनो पर सोना-बैठना न चाहिए।।56।।

गोयरग्गपविट्ठस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ।
इमेरिसमणायारं, आवज्जइ अबोहियं।।57।।

अन्वयार्थ— (गोयरग्ग पविट्ठस्स) गोचरी गया हुआ (जस्स) जो साधु (निसिज्जा कप्पइ) गृहस्थ के घर पर बैठता है उसे

(इमेरिस) अगली गाथा मे कहा जाने वाला (अणायार) अनाचार दोष लगने की सभावना रहती है तथा (अबोहिय) मिथ्यात्व की (आवज्जइ) प्राप्ति होती है।।57।।

विवत्ती बभचेररस्स, पाणाण च वहे वहो।
वणीमग पडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिणं।।58।।

अन्वयार्थ– गृहस्थ के घर बैठने से साधु के (बभचेररस्स) ब्रह्मचर्य के (विवत्ती) नाश होने की तथा (पाणाण) प्राणियो का (वहे) वध होने से (वहो) सयम दूषित होने की सभावना रहती है (वणीमगपडिग्घाओ) तथा उसी समय यदि कोई भिखारी भिक्षा के लिए आवे तो उसकी भिक्षा मे अन्तराय होने की सभावना रहती है (च) और साधु के चारित्र पर सदेह होने से (अगारिण) गृहस्थ (पडिकोहो) कुपित हो सकता है।।58।।

अगुत्ती बभचेररस्स, इत्थीओ वावि संकण।
कुसील वड्ढणं ठाणं, दूरओ परिवज्जए।।59।।

अन्वयार्थ– गृहस्थ के घर बैठने से (बभचेररस्स) साधु के ब्रह्मचर्य की (अगुत्ती) गुप्ति-रक्षा नहीं हो सकती (वावि) और (इत्थीओ) स्त्रियो के विशेष ससर्ग से (सकण) ब्रह्मचर्यव्रत मे शका उत्पन्न हो सकती है। इसलिए (कुसीलवड्ढण) कुशील को बढाने वाले (ठाण) इस स्थान को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वर्ज दे।।59।।

तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पई।
जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो।।60।।

अन्वयार्थ– (जराए अभिभूयस्स) जराग्रस्त– वृद्ध (वाहियस्स) रोगी और (तवस्सिणो) तपस्वी (तिण्ह) इन तीन मे से (अन्नयरागस्स जस्स) किसी भी साधु को कारणवश (निसिज्जा) गृहस्थ के घर बैठना (कप्पई) कल्पता है अर्थात् शारीरिक निर्बलतादि के कारण यदि ये गृहस्थ के घर बैठे तो पूर्वोक्त दोषो की सभावना नहीं है।।60।।

वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाणं जो उ पत्थए।
वुक्कतो होइ आयारो, जढो हवइ संजमो।।61।।

अन्वयार्थ– (वा) चाहे (वाहिओ) रोगी हो (वा) अथवा (अरोगी) निरोग हो किन्तु (जो) जो साधु (सिणाण) स्नान करने की (पत्थए) इच्छा करता है (उ) तो निश्चय ही (आयारो) वह आचार से (वुक्कतो) भ्रष्ट (होई) हो जाता है और (सजमो) उसका सयम (जढो) मलिन (हवइ) हो जाता है।।61।।

संतिमे सुहुमा पाणा, घसासु भिलगासु य।
जे य भिक्खू सिणायतो, वियडेणुप्पलाविए।।62।।

अन्वयार्थ– (घसासु) खारवाली, पोली भूमि मे (य) और (भिलगासु-भिलुगासु) फटी हुई दरारो वाली भूमि मे (सुहुमा) सूक्ष्म (पाणा) प्राणी (सति) होते है अत यदि (भिक्खू) साधु (वियडेण) गरम जल से भी (सिणायतो) स्नान करेगा तो (इमे) उन सूक्ष्म जीवो की (उप्पलावए-उप्पिलावए) हिसा हुए बिना न रहेगी।।62।।

तम्हा ते न सिणायंति, सीएण उसिणेण वा।
जावज्जीव वयं घोरं, असिणाण महिट्ठगा।।63।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (ते) शुद्ध सयम का पालन करने वाले साधु (सीएण) ठडे जल से (वा) अथवा (उसिणेण) गरम जल से (न सिणायति) कभी भी स्नान नही करते किन्तु वे (जावज्जीव) जीवनपर्यन्त (असिणाण) अस्नान नामक (घोर) कठिन (वय) व्रत का (अहिट्ठगा) पालन करते है।।63।।

सिणाणं अदुवा कक्कं, लुद्धं पउमगाणि य।
गायस्सुव्वट्टणट्ठाए नायरंति कयाइ वि।।64।।

अन्वयार्थ– सयमी पुरुष (सिणाण) स्नान (अदुवा) अथवा (कक्क) कल्क-चन्दनादि सुगन्धी द्रव्य (लुद्ध) लोद (य) और (पउमगाणि) कुकुम, केसर आदि सुगधित द्रव्यो का (गायस्सुव्वट्टणट्ठाए) अपने

शरीर के उबटन-मर्दन के लिए (कयाइ वि) कदापि (नायरति) सेवन नही करते।।64।

नगिणस्स वावि मुडस्स, दीहरोम नहसिणो।
मेहुणा उवसतस्स, कि विभूसाइ कारिय।।65।।

अन्वयार्थ– (नगिणस्स) प्रमाणोपेत वस्त्र रखने वाला स्थविर कल्पी अथवा नग्न रहने वाला जिनकल्पी (मुडस्स) द्रव्य और भाव से मुण्डित (दीहरोम नहसिणो) और जिसके नख और केश बढे हुए है ऐसे (वावि) तथा (मेहुणा-मेहु-मेहुणाओ) विषय–वासना से (उवसतस्स) सर्वथा उपशात साधु को (विभूसाइ-विभूसाए) शरीर की शोभा एव श्रृगार से (कि) क्या (कारिय) प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नही है।।65।।

विभूसावत्तियं भिक्खू, कम्म बधइ चिक्कणं।
ससारसायरे घोरे, जेण पडइ दुरुत्तरे।।66।।

अन्वयार्थ– (विभूसावत्तिय) शरीर की विभूषा एव शोभा श्रृगार करने से (भिक्खू) साधु को (चिक्कण) ऐसे चिकने (कम्म) कर्मो का (वधइ) बध होता है (जेण) जिससे वह (घोरे) जन्म, जरा–मरण के भय से भयकर (दुरुत्तरे) मुश्किल से पार किये जाने वाले (ससारसायरे) ससाररूपी सागर मे (पडइ) गिर पडता है।।66।।

विभूसा वत्तिय चेय, बुद्धा मन्नति तारिस।
सावज्ज बहुलं चेय, नेयं ताईहि सेविय।।67।।

अन्वयार्थ– (बुद्धा) ज्ञानी पुरुष (विभूसावत्तिय) शरीर की विभूषा सबधी सकल्प-विकल्प करने वाले (चेय) मन को (तारिस) चिकने कर्मबध का कारण (च) और (सावज्जबहुल) बहुत पापो की उत्पत्ति का हेतु (मन्नति) मानते है (एय) इसलिए (ताईहि) छ काय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) शरीर की विभूषा का [illegible] से [illegible] चिन्तन भी न करना चाहिए।।67।।

खवंति अप्पाणममोह दंसिणो, तवे रया संजमअज्जवे गुणे।
धुणति पावाइ पुरे कडाइं, नवाइं पावाइं न ते करति।।68।।

अन्वयार्थ– (अमोहदसिणो) मोहरहित तथा तत्त्व के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता (सजम) सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाले (अज्जवे गुणे) आर्जवता आदि गुणो से सयुक्त तथा (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रया) रत रहने वाले (ते) पूर्वोक्त अठारह स्थानो का यथावत् पालन करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि (पुरेकडाइ) पहले किए हुए (पावाइ) पाप कर्मो को (धुणति) क्षय कर देते है और (नवाइ) नवीन (पावाइ) पापकर्मो का (न करति) बध नही करते– इस प्रकार वे मुनि (अप्पाण) अपनी आत्मा मे रहे हुए कषायादि मल को (खवति) सर्वथा क्षय कर डालते है।।68।।

सओवसंता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणुगया जसंसिणो।
उउप्पसन्ने विमलेव चंदिमा, सिद्धिं विमाणाइं उवेंति ताइणो।।६६।।
।।बेमि।।

अन्वयार्थ– (ताइणो) छ काय जीवो के रक्षक (सओवसता) सदा उपशात (अममा) मोह–ममतारहित (अकिचणा) निष्परिग्रही (सविज्जविज्जाणुगया) आध्यात्मिक विद्या का अनुसरण करने वाले (जससिणो) यशस्वी तथा (उउप्पसन्ने) शरद ऋतु के स्वच्छ (चदिमा) चन्द्रमा के (इव) समान (विमला) निर्मल मुनि (सिद्धि) कर्मो का सर्वथा क्षय करके सिद्धगति को (उवेति-उवति) प्राप्त होते है अथवा कुछ कर्म बाकी रहने पर (विमाणाइ) वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते है।।69।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।



'सुवाक्यशुद्धि' नामक सातवां अध्ययन

इस अध्ययन मे भाषाशुद्धि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है–

चउण्हं खलु भासाण, परिसंखाय पन्नवं।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो न भासिज्जा सव्वसो।।1।।

अन्वयार्थ– (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (चउण्ह) सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार इन चार (भासाण) भाषाओ के स्वरूप को (खलु) भली प्रकार (परिसंखाय) जानकर (दुण्ह) सत्य और व्यवहार इन दो भाषाओ का (विणयं) विवेकपूर्वक उपयोग करना (सिक्खे) सीखे (तु) और (दो) असत्य और मिश्र इन दो भाषाओ को (सव्वसो) सब प्रकार से (न भासिज्ज) न बोले।।1।।

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा।
जा य बुद्धेहि नाइन्ना, न तं भासिज्जा पन्नव।।2।।

अन्वयार्थ– (जा य) जो भाषा (सच्चा) सत्य है किन्तु (अवत्तव्वा) अप्रिय और अहितकारी होने से बोलने योग्य नहीं है (य) और (जा) जो भाषा (सच्चामोसा) सत्यामृषा-मिश्र है (य) तथा (जा) जो भाषा (मुसा) मृषा है (त) इन भाषाओ को (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) न बोले क्योकि (बुद्धेहि) तीर्थकर देवो ने (नाइन्ना) इन भाषाओ को बोलने की आज्ञा नही दी है।।2।।

असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं।
समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासिज्ज पन्नवं।।3।।

अन्वयार्थ– (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (अणवज्ज) निरवद्य-पापरहित (अकक्कस) कर्कशतारहित मधुर (च) और (असदिद्ध) सन्देहरहित स्पष्ट (असच्चमोस) असत्यामृषा-व्यवहार भाषा ओर (सच्च) सत्य (गिर) भाषा को (समुप्पेह) अच्छी तरह विचार कर विवेकपूर्वक (भासिज्ज) बोले।।3।।

एय च अट्ठमन्न वा, ज तु नामेइ सासय।
स भासं सच्चमोस पि, तंपि धीरो विवज्जए।।4।।

अन्वयार्थ– (एय च) सावद्य और कर्कशतायुक्त (अट्ठ) अर्थ को (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार के दूसरे अर्थ का प्रतिपादन करने वाली (ज तु) जो भाषा (सासय) शाश्वत सुख की (नामेइ) विघातक है अर्थात् जिस भाषा के बोलने से मोक्षप्राप्ति मे बाधा पहुचती है, चाहे वह (सच्चमोस भास) सत्यामृषा-मिश्र भाषा हो अथवा (पि–च) सत्य भाषा हो (त पि) उसे (स) सत्यव्रतधारी (धीरो) बुद्धिमान् साधु (विवज्जए) वर्ज दे अर्थात् ऐसी भाषा न बोले।।4।।

वितहं पि तहामुत्तिं, जं गिरं भासए नरो।
तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुण जो मुसं वए।।5।।

अन्वयार्थ– (नरो) जो मनुष्य (तहामुत्ति पि) बाह्य वेश के अनुसार अर्थात् स्त्री–वेषधारी पुरुष को स्त्री एव पुरुषवेष वाली स्त्री को पुरुष कहने रूप (ज) जिस (वितह) असत्य (गिर) भाषा को (भासए) बोलता है (तम्हा) इससे (सो) वह पुरुष (पावेण) पाप से (पुट्ठो) स्पृष्ट होता है अर्थात् पाप का भागी होता है तो (पुण) फिर (जो) जो व्यक्ति (मुस) साक्षात् झूठ (वए) बोलता है उसका तो (कि) कहना ही क्या ? अर्थात् उसके तो पापकर्म का बध अवश्य होता है।।5।।

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ।।6।।

एवमाइ उ जा भासा, एस कालम्मि, सकिया।
सपयाइ अमट्ठे वा, तपि धीरो विवज्जए।।7।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (गच्छामो) कल हम यहा से अवश्य चले जावेगे (वक्खामो) अमुक बात हम उनको अवश्य कह देगे या कल हम यहा पर अवश्य व्याख्यान देगे (वा) अथवा (णे) हमारा (अमुग) अमुक कार्य (भविस्सइ) अवश्य हो जायगा (वा) अथवा (अह) मै (ण) उस कार्य को (करिस्सामि) अवश्य कर दूगा (वा) अथवा (एसो) यह व्यक्ति (ण) उस कार्य को (करिस्सइ) अवश्य कर देगा। (एवमाइ) इस प्रकार की (जा उ) जो (भासा) भाषा (एसकालम्मि) भविष्यत् काल मे (सकिया) सशययुक्त हो (वा) अथवा (सपयाइअमट्ठे) इसी प्रकार की जो भाषा वर्तमान और अतीतकाल के विषय मे सशययुक्त हो (तपि) उसे (धीरो) धैर्यवान् साधु (विवज्जए) वर्जे अर्थात् साधु निश्चयकारी भाषा न बोले।।6–7।।

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पणमणागए।
जमट्ठ तु न जाणिज्जा, एवमेयंति नो वए।।8।।

अन्वयार्थ– (अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत् (कालम्मि) काल सम्बन्धी (ज) जिस (अट्ठ) अर्थ को– वस्तु को (न जाणिज्जा) अच्छी तरह न जानता हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेयति) यह वस्तु ऐसी ही है, इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा (नो वए) साधु न बोले।।8।।

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
जत्थ संका भवे त तु, एवमेयत्ति नो वए।।9।।

अन्वयार्थ– (अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत् (कालम्मि) काल मे (जत्थ) जिस वस्तु के विषय मे (सका) सशय (भवे) हो (तु) तो (त) उस वस्तु के विषय मे (एवमेय) यह ऐसा ही है (ति–तु) इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा (नो वए) साधु न बोले।।9।।

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
निस्सकियं भवे ज तु, एवमेय ति निद्दिसे।।10।।

अन्वयार्थ– (अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत् (कालम्मि) काल मे (ज) जो वस्तु (निस्सकिय) शकारहित (भवे) हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेय) यह ऐसा है (ति) इस प्रकार साधु (निद्दिसे) निरवद्य भाषा मे भाषण कर सकता है।।10।।

तहेव फरुसा भासा, गुरु भूओवघाइणी।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो।।11।।

अन्वयार्थ– (तहेव) शकित भाषा की तरह (फरुसा) कठोर (भासा) भाषा भी (गुरुभूओवघाइणी) बहुत प्राणियो के प्राणो का नाश करने वाली होती है अत (सा) इस प्रकार की भाषा (सच्चा वि) सत्य हो तो भी साधु को (न) न (वत्तव्वा) बोलनी चाहिए (जओ) क्योकि इससे (पावस्स) पाप कर्म का (आगमो) बन्ध होता है।।11।।

तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगत्ति वा।
वाहियं वावि रोगित्ति, तेणं चोरत्ति नो वए।।12।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (काण) काणे को (काणत्ति) काणा (वा) अथवा (पडग) नपुंसक को (पडगत्ति) नपुसक (वावि) तथा (वाहिय) रोगी को (रोगित्ति) रोगी और (तेण) चोर को (चोरत्ति-चोरेत्ति) चोर (नो) न (वए) कहे अर्थात् दूसरो को दुख पहुचाने वाली सत्य भाषा भी साधु को न बोलनी चाहिए।।12।।

एएणऽन्नेण अट्ठेणं, परो जेणुवहम्मइ।
आयारभावदोसन्नू, न तं भासिज्ज पन्नवं।।13।।

अन्वयार्थ– (आयारभावदोसन्नू) आचार एव भाव के दोषो को जानने वाला (पन्नव) विवेकी साधु (एएण) उपरोक्त (अट्ठेण) अर्थ को बतलाने वाली अथवा (अन्नेण) अन्य किसी दूसरे प्रकार की भाषा (जेण) जिससे (परो) दूसरे प्राणी को (उवहम्मइ) पीडा पहुचे (त) ऐसी पर-पीडाकारी भाषा (न भासिज्ज) न बोले।।13।।

तहेव होले गोलित्ति, साणे वा वसुलित्ति य।
दमए दुहए वावि, नेव भासिज्ज पन्नवं।।14।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (होले) रे मूर्ख (गोलित्ति) रे लपट (वा) तथा (साणे) रे कुत्ते। (य) और (वसुलित्ति) रे दुराचारिन्। (वावि) अथवा (दमए) रे कगाल। (दुहए) रे अभागे। इत्यादि (नेव भासिज्ज) कठोर शब्दो का प्रयोग कदापि न करे।।14।।

अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउसियत्ति य।
पिउस्सिए भायणिज्जत्ति, धूए णत्तुणिअत्ति य।।15।।
हले हलित्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिणि गोमिणि।
होले गोले वसुलित्ति, इत्थिअं नेव मालवे।।16।।

अन्वयार्थ– (अज्जिए) हे दादी। या हे नानी। (वावि) अथवा (पज्जिए) हे परदादी। या हे परनानी (हे अम्मो) हे मा। (य) और (माउसियत्ति) हे मौसी। (पिउस्सिए) हे भुआ। (भायणिज्ज त्ति) हे भानजी। (धूए) हे पुत्री। (य) और (णत्तुणिअत्ति) हे दोहिती। या हे पोती। (हले हलित्ति) हे सखी। (अन्नित्ति) हे अन्ने। (भट्टे) हे भट्टे। (सामिणी) हे स्वामिनी। (गोमिणी) हे गोमिनि-गवालिन (होले) हे मूर्ख। (गोले) हे गोली। (वसुलित्ति) हे दुराचारिणी। (एव) इत्यादि निन्दित सबोधनो से सबोधित करके (इत्थिअ) किसी भी स्त्री को साधु (नेव आलवे) न बोलावे।।15–16।।

णामधिज्जेण णं बूआ, इत्थीगुत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा।।17।।

अन्वयार्थ– (ण) उस स्त्री का (णामधिज्जेण) जो प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (इत्थीगुत्तेण) उस स्त्री का जो गोत्र हो उस गोत्र से सम्बोधित करके (बूआ) बोले तथा (जहारिह) यथायोग्य गुण–अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश करके

(आलविज्ज) एक बार बोले (वा) अथवा (लविज्ज) बार-बार बोले।।17।।

अज्जए पज्जए वावि, बप्पो चुल्लपिउत्ति य।
माउलो भाइणिज्ज त्ति, पुत्ते णत्तुणिअ त्ति य।।18।।
हे भो हलित्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिअ गोमिअ।
होल गोल वसुलि-त्ति, पुरिसं नेव मालवे।।19।।

अन्वयार्थ– (अज्जए) हे दादा या हे नाना। (वावि) अथवा (पज्जए) हे परदादा या हे परनाना। (बप्पो) हे पिता। (य) और (चुल्लपिउत्ति) हे चाचा। (माउलो) हे मामा। (भाइणिज्जत्ति) हे भानजे। (पुत्ते) हे पुत्र। (य) और (णत्तुणिअ त्ति) हे दोहिता। हे पोता। (हे हलित्ति) रे सखे। (भो अन्नित्ति) रे अन्न। (भट्टे-भट्टा) रे भट्ट। (सामिअ) हे स्वामिन्। (गोमिय) रे गोमिन् गाय वाले (होल) रे मूर्ख। (गोल) रे लपट। (वसुलित्ति) हे दुराचारिन् (एव) इत्यादि निन्दित एवं अपमानजनक सम्बोधनो से (पुरिस) किसी भी पुरुष को सम्बोधित न करे।।18–19।।

णामधिज्जेण णं बूआ, पुरिसगुत्तेण या पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा।।20।।

अन्वयार्थ– (ण) उस पुरुष का (णामधिज्जेण) जो प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (पुरिसगुत्तेण) उस पुरुष का जो गोत्र हो उस गोत्र से सम्बोधित कर (बूआ) बोले (वा) अथवा (जहारिह) यथायोग्य गुण–अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश करके (आलविज्ज) एक बार बोले अथवा आवश्यकतानुसार (लविज्ज) बार-बार बोले।।20।।

पंचिदिआण पाणाण, एस इत्थी अयं पुमं।
जाव णं न विज्जाणिज्जा, ताव जाइ त्ति आलवे।।21।।

अन्वयार्थ– (पचिंदिआण) पचेन्द्रिय (पाणाण) प्राणी गाय, भैस, घोडा आदि के विषय मे (जाव) जब तक (एस) यह (इत्थी) गाय, भैस, घोडी आदि है अथवा (अय) यह (पुम) बैल, भैस, घोडा आदि है (ण) इस प्रकार स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग आदि का ठीक-ठीक रूप से (न विज्जाणिज्जा) निश्चय न हो जाय (ताव) तब तक (जाइ) यह गोजाति है, अश्वजाति है (त्ति) इस प्रकार (आलवे) साधु बोले।।21।।

तहेव माणुसं पसु, पक्खि वावि सरीसवं।
थूले पमेइले वज्झे, पायमित्ति य नो वए।।22।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (माणुस) मनुष्य (पसु) पशु (पक्खि) पक्षी (वावि) अथवा (सरीसव) सर्प आदि को देखकर (थूले) वह बडा मोटा-ताजा है (पमेइले) यह बडी तोद वाला है, इसके शरीर मे चर्बी बहुत बढी हुई है (वज्झे) यह शस्त्र द्वारा मार देने योग्य है (य) अथवा (पाय) अग्नि मे पकाने योग्य है (इत्ति) इस प्रकार परपीडाकारी वचन साधु को (नो) नही (वए) बोलना चाहिए।।22।।

परिवूढत्ति णं बूआ, बूआ उवचिअ त्ति य।
सजाए पीणिए वावि, महाकाय-त्ति आलवे।।23।।

अन्वयार्थ– (ण) यदि स्त्री-पुरुष के विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (परिवूढ-परिवुड्ढे) यह सामर्थ्यवान् है अथवा यह सब प्रकार से वृद्ध है (त्ति) इस प्रकार (बूआ) बोलना चाहिए (य) अथवा (उवचिअ–उवचिए) यह स्वस्थ एव पुष्ट शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार (बूआ) बोलना चाहिए (वावि) अथवा (सजाए) यह पूरे अग-उपाग वाला है (पीणिए) यह प्रसन्न एव निष्क्रिक्र है तथा (महाकाय) यह बडे शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार आवश्यकता पडने पर (आलवे) साधु बोल सकता है।।23।।

तहेव गाओ दुज्झाओ, दम्मा गोरहगत्ति य।
वाहिमा रह जोगित्ति, नेव भासिज्ज पन्नवं।।24।।

अन्वयार्थ— (तहेव) जिस प्रकार मनुष्य आदि के विषय मे सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार पशुओ के लिए भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए यथा (गाओ) ये गाये (दुज्झाओ) दुहने योग्य है अर्थात् इन गायो के दूध निकालने का समय हो गया है (य) तथा (गोरहगत्ति) ये बछडे अब (दम्मा) दमन करने योग्य है अर्थात् नाथने योग्य है अथवा वधिया—खसी करने के लायक है (वाहिमा) हलादि मे जोतने योग्य है और (रहजोगित्ति) रथ मे जोतने योग्य हैं (एव) इस प्रकार (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) सावद्य भाषा न बोले।।24।।

जुव गवित्ति णं बूआ, धेणु रसदयत्ति य।
रहस्से महल्लए वावि, वए संवहणित्ति य।।25।।

अन्वयार्थ— (ण) गाय-बैल आदि के विषय मे यदि बोलने की आवश्यकता हो तो (गवित्ति) यह बैल (जुव) जवान है (य) और (धेणु) यह गाय (रसदय) दुधारु है (त्ति) इस प्रकार (बूआ) बोले (वावि) अथवा (रहस्से) यह बछडा छोटा है (महल्लए) यह बैल बडा है (य) तथा (सवहणित्ति) यह बैल धोरी है अर्थात् उठाये हुए भार को पार पहुचाने वाला है इस प्रकार (वए) निरवद्य वचन बोल सकता है।।25।।

तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए, नेवं भासिज्ज पन्नवं।।26।।

अलं पासायखंभाण, तोरणाण गिहाण य।
फलिहऽग्गल-नावाणं, अलं उदग-दोणिणं।।27।।

अन्वयार्थ— (तहेव) जिस प्रकार पशु आदि के लिए सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार वृक्ष आदि के विषय मे भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए (उज्जाण) बगीचे (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वन के अन्दर (गतु) जाकर वहा (महल्ल) विशाल

(रुक्खा) वृक्षो को (पेहाए) देखकर (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (एव) इस प्रकार (न भासिज्ज) न बोले कि ये वृक्ष (पासायखभाण) महल के खभो के लिए (तोरणाण-तोरणाणि) नगर के दरवाजे बनाने के लिए (य) और (गिहाण-गिहाणि) झोपडी आदि बनाने के लिए (अल) योग्य है तथा (फलिहऽग्गलनावाण) परिघ-भोगल, आगल और नाव बनाने के लिए तथा (उदगदोणिण) जलपात्र अथवा छोटी नौका बनाने के लिये (अल) योग्य है।।26-27।।

पीढए चंगबेरे य, नंगले मइयं सिया।
जतलट्ठी व नाभी वा, गडिआ व अलं सिया।।28।।
आसणं सयण जाणं, हुज्जा वा किंचुवस्सए।
भूओवघाइणि भास, नेव भासिज्ज पन्नवं।।29।।

अन्वयार्थ– ये वृक्ष (पीढए) बाजोट (चगबेरे-रा) कठौती (नगले) हल की मूठ (य) और (मइय) जोते हुए खेत को बराबर करने के लिए फिराये जाने वाले मेडे के लिए (अल) योग्य (सिया) है (व) अथवा (जतलट्ठी) कोल्हू आदि यत्रो के लाठ (वा) अथवा (नाभी) गाडी के पहिये की नाभी (व) अथवा (गडिया) सुनार की एरण रखने का लकडी का ढाचा बनाने के लिए (अल) योग्य (सिया) है (आसण) कुर्सी, पाटा आदि बैठने का आसन (सयण) सोने के लिए बडा पाटा या खाट (वा) अथवा (जाण) रथ एव पालकी (किच) और (उवस्सए) उपाश्रय के किवाड आदि बनाने के लिए (हुज्जा) योग्य है (एव) इस प्रकार (भूओवघाइणि) एकेन्द्रियादि प्राणियो की घात करने वाली एव परपीडाकारी (भास) भाषा (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) कदापि न बोले।।28-29।।

तहेव गंतु मुज्जाण, पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए, एवं भासिज्ज पन्नवं।।30।।
जाइमंता इमे रुक्खा, दीहवट्टा महालया।
पयाय साला विडिमा, वए दरिसणित्ति य।।31।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (उज्जाण) उद्यान (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वनादि के अन्दर (गतु) गया हुआ (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (महल्ल) बडे-बडे (रुक्खा) वृक्षो को (पेहाए) देखकर यदि उनके विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (एव) इस प्रकार (भासिज्ज, वए) निरवद्य वचन कह सकता है कि (इमे) ये (रुक्खा) वृक्ष (जाइमता) उत्तम जाति के (दीहवट्टा) बहुत लम्बे गोलाकार (महालया) बहुत विस्तार वाले (पयायसाला) बडी-बडी शाखा (य) और (विडिमा-वडिमा) प्रतिशाखाओ से युक्त है अतएव (दरिसणित्ति) सुन्दर एव दर्शनीय है।।30-31।।

तहा फलाइ पक्काइं, पाय खज्जाइ नो वए।
वेलोइयाइं टालाइं, वेहिमाइ त्ति नो वए।।32।।

अन्वयार्थ– (तहा) जिस प्रकार वृक्षो के विषय मे सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार फलो के विषय मे भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए, जैसे कि (फलाइ) ये फल (पक्काइ) स्वत पककर तैयार हो गये है तथा (पायखज्जाइ) पकाकर खाने योग्य हैं (नो वए) इस प्रकार साधु न बोले और (वेलोइयाइ) ये फल अधिक पके हुए है इसलिए अभी खाने योग्य है (टालाइ) अथवा बहुत कोमल है एव अभी तक इनमे गुठली भी नहीं पडी है इसलिए (वेहिमाइ) चाकू से काटकर दो टुकडे करने योग्य है (त्ति) इस प्रकार भी (नो वए) न बोले।।32।।

असंथडा इमे अंबा, बहू निव्वडिमा फला।
वइज्ज बहुसंभूआ, भूअरूवत्ति वा पुणो।।33।।

अन्वयार्थ– प्रयोजन पडने पर साधु (वइज्ज) इस प्रकार निरवद्य भाषा बोल सकता है कि (इमे) ये (अबा) आम्रवृक्ष (असथडा) फलो का भार उठाने मे असमर्थ है अथवा इन आम्रवृक्षो मे बहुत-से फल लगे है जिनके बोझ से झुककर ये नम्र बन गये हे (बहुनिव्वडिमाफला) ये वृक्ष बहुत से फलो के गुच्छो से युक्त है (वा)

अथवा (बहुसभूआ) इस बार बहुत अधिक फल लगे है (पुणो) अथवा (भूअरूवत्ति) बहुत फल लगने से ये वृक्ष बहुत सुन्दर दिखाई देते है।।33।।

तहेवोसहिओ पक्काओ, नीलियाओ छवीइ य।
लाइमा भज्जिमाउ त्ति, पिहुखज्ज त्ति नो वए।।34।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (ओसहिओ) ये शालि, गेहू आदि धान्य (पक्काओ) पक चुके है अत (लाइमा) अब ये काट लेने योग्य हैं। (य) तथा (नीलियाओ छवीइ) ये चवले आदि की फलिया नीली एव कोमल है अत (भज्जिमाउत्ति) कडाही मे डाल कर भूनने योग्य हैं अथवा (पिहुखज्ज) होला बना कर, अग्नि मे सेक कर खाने योग्य है (त्ति) इस प्रकार साधु (नो वए) न बोले।।34।।

रूढा बहु सभूआ, थिरा ओसढा वि य।
गब्भिआओ पसुआओ, संसाराउ त्ति आलवे।।35।।

अन्वयार्थ– यदि धान्यादि के विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो साधु (आलवे) इस प्रकार निरवद्य वचन बोल सकता है कि (रूढा) इन शालि, गेहू आदि धान्यो के अकुर निकल आये है (बहुसभूआ) बहुत अकुर फूट निकले है तथा ये पत्तो से युक्त हो गये हैं (य) तथा (थिरा) स्थिर हो गये है (वि) और (ओसढा) धान्य बढकर ऊचे आ गये है (गब्भिआओ) अभी तक इन मे सिट्टे नहीं निकले है (पसुआओ) अब इन मे प्राय सिट्टे निकल आये हैं (ससाराउत्ति) इन सिट्टो मे दाने पड गये है।।35।।

तहेव संखडिं नच्चा, किच्चं कज्जति नो वए।
तेणग वावि वज्झित्ति, सुतित्थित्ति य आवगा।।36।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (सखडि) गृहस्थ के घर जीमनवार को (नच्चा) जानकर (किच्च) यह कार्य (कज्ज) करना ही चाहिए (वावि) अथवा (तेणग) चोर को देखकर (वज्झित्ति) यह मार देने योग्य है (य) और (आवगा) नदियो को देखकर (सुतित्थित्ति) ये

भली प्रकार से तैरने योग्य है अथवा जलक्रीडा करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले।।36।।

सखडिं संखडिं बूआ, पणिअट्ठ त्ति तेणगं।
बहुसमाणि तित्थाणि, आवगाणं वियागरे।।37।।

अन्वयार्थ– जीमनवार आदि के विषय मे बोलना पडे तो (सखडि) जीमनवार को (सखडि) बहुत जीवो का उपघातपूर्वक होने वाला आरम्भ-समारम्भ (बूआ) कहे (तेणग) चोर के विषय मे (पणिअट्ठ) अपने प्राणो को कष्ट मे डालकर भी धन के लिए यह चोरी करने वाला है (त्ति) इस प्रकार कहे तथा (आवगाण) इन नदियो के (तित्थाणि) किनारे (बहुसमाणि) बहुत समान हैं– इस प्रकार (वियागरे) निरवद्य भाषा बोले।।37।।

तहा नईओ पुण्णाओ, कायत्तिज्ज त्ति नो वए।
नावाहिं तारिमाउत्ति, पाणि पिज्ज त्ति नो वए।।38।।

अन्वयार्थ– (तहा) इसी तरह (नईओ) वे नदिया (पुण्णाओ) जल से पूर्ण भरी हुई है अत (कायत्तिज्ज) भुजाओ से तैरने योग्य है (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले अथवा (नावाहि) ये नदिया नावो से (तारिमाउ) पार करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार तथा (पाणि पिज्ज) प्राणी इसके तट पर से ही सुखपूर्वक पानी पी सकते हैं (त्ति) इस प्रकार भी (नो वए) न बोले।।38।।

बहु बाहडा अगाहा, बहु सलिलुप्पिलोदगा।
बहु वित्थडोदगा आवि, एवं भासिज्ज पन्नवं।।39।।

अन्वयार्थ– यदि कदाचित् इन के विषय मे बोलना ही पडे तो (बहुबाहडा) ये नदिया जल से लबालब भरी हुई है (अगाहा) ये नदिया अगाध जल वाली है (बहुसलिलुप्पिलोदगा) इन नदियो का जल तरङ्गो से बहुत उछल रहा है (आवि) और (बहुवित्थडोदगा) इन नदियो का जल बहुत विस्तारपूर्वक बह रहा है। (एव) इस प्रकार (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (भासिज्ज) निरवद्य भाषा बोले।।39।।

तहेव सावज्जं जोग, परस्सट्ठा अ निट्ठियं।
कीरमाण ति वा नच्चा, सावज्जं न लवे मुणी।।40।।

अन्वयार्थ– (तहेव) उसी तरह (परस्सट्ठा) दूसरे के लिए (निट्ठिय) भूतकाल मे किये गये (अ) और (कीरमाण) वर्तमानकाल मे किये जाने वाले (वा) अथवा भविष्यत्काल मे किये जाने वाले (सावज्ज) पापयुक्त (जोग) जोग को-कार्य को (नच्चा) जानकर (मुणी) मुनि (ति) यह कार्य अच्छा किया इस प्रकार (सावज्ज) सावद्य भाषा (न लवे) न बोले।।40।।

सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे।
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्ज, वज्जए मुणी।।41।।

अन्वयार्थ– (सुकडित्ति) यह प्रीतिभोज आदि कार्य अच्छा किया अथवा यह सभाभवन आदि अच्छा बनवाया (सुपक्कित्ति) शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल अच्छा पकाया (सुच्छिन्ने) यह भयकर वन काट दिया सो अच्छा किया (सुहडे) इस कजूस का धन चोर चुरा ले गये सो अच्छा हुआ (मडे) वह दुष्ट मर गया सो अच्छा हुआ (सुनिट्ठिए) इस धनाभिमानी का धन नष्ट हो गया सो बहुत ठीक हुआ (सुलट्ठित्ति) यह कन्या हृष्ट-पुष्ट अवयव वाली नवयौवना एव सुन्दर है अत विवाह करने योग्य है इस प्रकार (मुणी) मुनि (सावज्ज) सावद्य वचन (वज्जए) वर्ज दे-न बोले- किन्तु इस प्रकार निरवद्य वचन बोले कि (सुकडित्ति) इस मुनि ने वृद्ध मुनियो की वैयावच्च एव सेवा-शुश्रूषा अच्छी की (सुपक्कित्ति) इस मुनि ने ब्रह्मचर्य व्रत का अच्छा पालन किया है (सुच्छिन्ने) अमुक मुनि ने सासारिक स्नेह-बन्धनो को अच्छी तरह काट दिया है (सुहडे) यह मुनि उपसर्ग के समय मे भी ध्यान मे खूब दृढ रहा अथवा इस तत्त्वज्ञ मुनि ने उपदेश द्वारा शिष्य का अज्ञान दूर कर दिया (मडे) अमुक मुनि को अच्छा पण्डितमरण प्राप्त हुआ (सुनिट्ठिए) अच्छा हुआ इस अप्रमादी मुनि के

सर्वकर्मो का नाश हो गया (सुलट्ठित्ति) अमुक मुनि की क्रिया बहुत सुन्दर है– इस प्रकार साधु को निरवद्य भाषा बोलनी चाहिए।।41।।

पयत्तपक्कत्ति व पक्क मालवे, पयत्तछिन्नत्ति व छिन्न मालवे।
पयत्तलट्ठित्ति व कम्म हेउय, पहारगाढत्ति व गाढ मालवे।।42।।

अन्वयार्थ– यदि कदाचित् इनके विषय मे बोलना पडे तो (पक्क) पकाये हुए शतपाक-सहस्रपाक तेलादि पदार्थो के विषय मे (पयत्तपक्कत्ति-पक्किक्त्ति) यह बडे प्रयत्न से आरम्भपूर्वक पकाया गया है– इस प्रकार (आलवे) बोले (व) तथा (छिन्न) काटे हुए वनादि के विषय मे (पयत्तछिन्नत्ति) यह बडे प्रयत्न से आरम्भपूर्वक काटा गया है– इस प्रकार (आलवे) बोले (व) और (पयत्तलट्ठित्ति) कन्या के विषय मे– यह कन्या सम्भालपूर्वक लालन-पालन की हुई है अथवा यदि यह कन्या दीक्षा ले तो सयम की क्रियाओ का सुन्दर रीति से पालन कर सकती है इस प्रकार बोले (व) अथवा (कम्महेउय) शृङ्गारादि क्रियाओ के विषय मे ऐसा कहे कि ये शृङ्गारादि क्रियाए कर्मबन्ध का कारण हैं (व) अथवा (गाढ पहारगाढत्ति) यह घाव बहुत गहरा है– इस प्रकार (आलवे) निरवद्य वचन कहे।।42।।

सव्वुक्कसं परग्घं वा, अउलं नत्थि एरिसं।
अविक्किअमवत्तव्वं, अचियत्तं चेव नो वए।।43।।

अन्वयार्थ– किसी गृहस्थ के साथ वार्तालाप करने का प्रसग आ जाय तो (सव्वुक्कस) यह वस्तु सबसे उत्कृष्ट है (वा) अथवा (परग्घ) अधिक मूल्य वाली है (अउल) अनुपम है (एरिस) इसके समान दूसरी कोई वस्तु (नत्थि) नहीं है (अविक्किअ) यह वस्तु अभी बेचने योग्य नही है (अवत्तव्व) इसमे इतने गुण हैं कि वे कहे नहीं जा सकते (चेव) और (अचियत्त) यह वस्तु बहुत गन्दी है (नो वए) इस प्रकार साधु न कहे।।43।।

सव्वमेयं वइस्सामि, सव्वमेयं ति नो वए।
अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ, एवं भासिअज्ज पन्नवं।।44।।

अन्वयार्थ– (एय) तुम्हारा कहा हुआ यह (सव्व) सब सन्देश (वइस्सामि) मै उससे ठीक इसी तरह कह दूगा तथा (एय) उसका सारा कथन (एव) ऐसा ही है (ति) इस प्रकार (पन्नव) विवेकी साधु (नो वए) नही बोले किन्तु (सव्वत्थ) सब जगह (सव्व) सव बात (अणुवीइ) बहुत सोच-विचार कर-जिस तरह मृषावाद का दोष न लगे उस तरह से (भासिज्ज) बोले।।44।।

सुक्कीय वा सुविक्कीय, अकिज्ज किज्जमेव वा।
इम गिण्ह इमं मुच, पणीय नो वियागरे।।45।।

अन्वयार्थ– (सुक्कीय) तुमने अमुक माल खरीद लिया सो अच्छा किया (वा) अथवा (सुविक्कीय) तुमने अमुक माल बेच दिया सो ठीक किया (अकिज्ज) यह वस्तु खरीदने योग्य नही है (वा) अथवा (किज्जमेव) यह वस्तु खरीदने योग्य है (इम) यह (पणीय) वस्तु-किराना इस समय (गिण्ह) ले लो-खरीद लो क्योकि इसमे लाभ होगा (इम) इस समय यह वस्तु (मुच) बेच डालो-क्योकि आगे जाकर इसमे नुकसान होगा (नो वियागरे) इस प्रकार साधु को नहीं कहना चाहिए।।45।।

अप्पग्घे वा महग्घे वा, कए वा विक्कए वि वा।
पणिअट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्जं वियागरे।।46।।

अन्वयार्थ– (अप्पग्घे) अल्पमूल्य वाले (वा) अथवा (महग्घे वा) बहुमूल्य वाले पदार्थ को (कए वा) खरीदने के विषय मे (वि वा) अथवा (विक्कए) बेचने के विषय मे यदि कभी (पणिअट्ठे) व्यापार सम्बन्धी प्रसङ्ग (समुप्पन्ने) उपस्थित हो जाय तो साधु (अणवज्ज) निरवद्य वचन (वियागरे) बोले अर्थात् ऐसा कहे कि व्यापार–वाणिज्य के विषय मे बोलने का साधुओ का कोई प्रयोजन नहीं है।।46।।

तहेवासजय धीरो, आस एहि करेहि वा।
सयं चिट्ठ वयाहित्ति, नेवं भासिज्ज पन्नवं।।47।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (धीरो) धैर्यवान् और (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (असजय) गृहस्थ के प्रति (आस) यहां बैठो (एहि) इधर आओ (वा) अथवा (करेहि) यह काम करो (सय) यहा सो जाओ (चिट्ठ) यहा खडे रहो (वयाहित्ति) यहा से चले जाओ (एव) इस प्रकार (न भासिज्ज) न बोले।।47।।

बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चंति साहुणो।
न लवे असाहुं साहुत्ति, साहुं साहुत्ति आलवे।।48।।

अन्वयार्थ– (लोए) लोक मे (इमे) ये (बहवे) बहुत–से (असाहू) असाधु भी (साहुणो) साधु (वुच्चति) कहे जाते है–किन्तु बुद्धिमान् साधु (असाहु) असाधु को (साहुत्ति) साधु (न लवे) न कहे किन्तु (साहु) साधु को ही (साहुत्ति) साधु (आलवे) कहे।। 48।।

नाणदंसणसंपन्नं, संजमे य तवे रयं।
एवं गुणसमाउत्तं, संजयं साहु मालवे।। 49।।

अन्वयार्थ– (नाण दसण सपन्न) सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन से युक्त (संजमे) सत्रह प्रकार के सयम मे (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रय) अनुरक्त (एव) इस प्रकार के (गुणसमाउत्त) गुणो से युक्त (सजय) साधु को ही (साहु) साधु (आलवे) कहना चाहिए।। 49।।

देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे।
अमुयाणं जओ होउ, मा वा होउ ति नो वए।। 50।।

अन्वयार्थ–(देवाण) देवताओ के (च) तथा (मणुयाण) मनुष्यो के (च) और (तिरियाण) तिर्यचो के– पशु–पक्षियो के (वुग्गहे) पारस्परिक युद्ध मे (अमुयाण–अमुगाण) अमुक पक्ष की (जओ) जीत (होउ) हो (वा) और (मा होउ) अमुक पक्ष की जीत न हो (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले।। 50।।

वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा।
कया णु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ ति नो वए।। 51।।

अन्वयार्थ— शीत–तापादि से पीडित होकर साधु (वाओ) वायु (च) और (वुट्ठ) वृष्टि (सीउण्ह) ठड और गर्मी (खेम) रोगादि की शान्ति (धाय) धान्य की अच्छी फसल (सिव ति) सुख शान्ति (एयाणि) ये सब (कया णु) कब (हुज्ज) होगे ? (वा) अथवा (मा होउ) ये सब बाते न हो (त्ति) इस प्रकार (नो वए) न कहे।। 51।।

तहेव मेह व नहं व माणव, न देव देवत्ति गिर वइज्जा।
समुच्छिए उन्नए वा पओए, वइज्ज वा वुट्ठ बलाहय त्ति।। ५२।।

अन्तलिक्ख त्ति ण बूया गुज्झाणुचरिअ त्ति य।
रिद्धिमत्त नर दिस्स, रिद्धिमंतं ति आलवे।। ५३।।

अन्वयार्थ— (तहेव) इसी प्रकार (मेह) मेघ को (व) अथवा (नह) आकाश को (व) अथवा (माणव) राजा आदि को देखकर (देव देव) यह देव है (त्ति) इस प्रकार का (गिर न वइज्जा) वचन साधु न बोले– किन्तु यदि प्रयोजन पडे तो मेघ के प्रति (समुच्छिए) यह मेघ ऊचा चढ रहा है (वा) अथवा (उन्नए) यह मेघ उन्नत है (वा) अथवा (पओए) यह मेघ जल से भरा हुआ है अथवा (वुट्ठ बलाहय) यह मेघ बरस चुका है (त्ति) इस प्रकार अदूषित वचन (वइज्ज) कहे और (ण) आकाश के प्रति (अतलिक्ख) यह अन्तरिक्ष है (य) अथवा (गुज्झाणुचरिअ) देवो के आने–जाने का मार्ग है। (त्ति) इस प्रकार (बूया) कहे (रिद्धिमत) किसी सम्पत्तिशाली (नर) मनुष्य को (दिस्स) देखकर (रिद्धिमत) यह सम्पत्तिशाली है (ति) इस प्रकार (आलवे) कहे।। 52-53।।

तहेव सावज्जणुमोअणी गिरा, ओहारिणी जा य परोवघाइणी।
से कोहलोहभयहास माणवो, न हासमाणो वि गिरं वइज्जा।।

अन्वयार्थ— (तहेव) इसी प्रकार (जा) जो (गिरा) भाषा (सावज्जणुमोअणी) सावद्य पाप कर्म का अनुमोदन करने वाली हो (ओहारिणी) निश्चयकारी हो (य) और (परोवघाइणी) प्राणियो का

उपघात करने वाली एव दूसरो को पीडा पहुचाने वाली हो (से) ऐसी (गिर) भापा (माणवो) साधु (कोहलोहभयहास) क्रोध, लोभ, भय और हास्य के वश होकर (हासमाणो वि) हसी-मजाक मे भी न (वइज्जा) न बोले।।54।।

सुवक्कसुद्धिं समुपेहिया मुणी, गिर च दुट्ठ परिवज्जए सया।
मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए, सयाण मज्झे लहई पससणं।।55।।

अन्वयार्थ– (मुणी) जो मुनि (सुवक्कसुद्धि-सवक्कसुद्धि) वाक्य की शुद्धि को (समुपेहिया) भलीभाति समझ कर (दुट्ठ) मृषावादादि दोषयुक्त (गिर) भाषा को (सया) हमेशा (परिवज्जए) छोड देता हे और (अणुवीइ) सोच-विचार कर (मिय) परिमित (च) और (अदुट्ठ-अदुट्ठ) निरवद्य वचन (भासए) बोलता है वह साधु (सयाणमज्झे) सत्पुरुषो के बीच मे (पससण) प्रशसा (लहई) प्राप्त करता है।।55।।

भासाइ दोसे य गुणे य जाणिया, तीसेय दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए, वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं।।56।।

अन्वयार्थ– (छसु) छ काय जीवो की (सजए) रक्षा करने वाला (सामणिए) चारित्र धर्म मे (सया) सदा (जए) उद्यम करने वाला (बुद्धे) बुद्धिमान् साधु (भासाइ) भाषा के (दोसे) दोषो को (य) ओर (गुणे) गुणो को (जाणिया) जानकर (तीसे) भाषा के (दुट्ठे) दोषो को (सया) सदा (परिवज्जए) त्याग दे (य) और (हिय) सब प्राणियो के हितकारी (य) तथा (अणुलोमिय) सब प्राणियो के अनुकूल भाषा (वइज्ज) बोले।।56।।

परिक्खभासी सुसमाहिइंदिए, चउक्कसायावगए अणिस्सिए।
से निद्धुणे धुन्नमलं पुरेकडं, आराहए लोगमिणं तहा परं।।57।।

(त्ति बेमि)

अन्वयार्थ– (परिक्खभासी) भापा के गुण-दोपो का विचार करके बोलने वाला (सुसमाहि इदिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखने

वाला (चउक्कसायावगए) क्रोधादि चार कषायो से रहित (अणिस्सिए) सासारिक प्रतिबन्धो से मुक्त (से) भाषा समिति का आराधक मुनि (पुरेकड) पूर्व उपार्जित (धुन्नमल-धुत्तमल) कर्मरूपी मैल को (निद्धुणे) नष्ट करके (इण) इस लोक (तहा) तथा (पर लोग) परलोक दोनो की (आराहए) सम्यक् आराधना कर लेता है अर्थात् सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है।।57।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।



'आचार प्रणिधि' नामक आठवां अध्ययन

आयारप्पणिहि लद्धुं, जहा कायव्व भिक्खुणा।
त भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे।।1।।

अन्वयार्थ– श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी को कहते है कि– हे आयुष्मन् शिष्य ! (आयारप्पणिहि) सदाचार के भण्डार स्वरूप साधुत्व को (लद्धु) प्राप्त करके (भिक्खुणा) साधु को (जहा) जिस प्रकार (कायव्व) आचरण करना चाहिए (त) उसकी विधि मै (भे) तुमसे (उदाहरिस्सामि) कहूगा सो तुम (मे) मुझसे (आणुपुव्वि) अनुक्रम से (सुणेह) सावधान होकर सुनो।।1।।

पुढविदगअगणिमारुअ, तणरुक्खस्स बीयगा।
तसा य पाणा जीव त्ति, इइ वुत्तं महेसिणा।।2।।

अन्वयार्थ– (पुढवि) पृथ्वीकाय (दग) अप्काय (अगणि) तेउकाय (मारुअ) वायुकाय तथा (तणरुक्खस्स बीयगा) तृण, वृक्ष और बीज रूप वनस्पतिकाय (य) और (तसा पाणा) त्रस प्राणी– ये सब (जीव त्ति) जीव है (इइ) इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर स्वामी ने (वुत्त) फरमाया है।।2।।

तेसिं अच्छणजोएण, निच्चं होयव्वयं सिया।
मणसाकायवक्केण, एव हवइ संजए।।3।।

अन्वयार्थ– मुनि को (मणसा) मन (कायवक्केण) वचन आर काया से (निच्च) निरन्तर (तेसि) पूर्वोक्त छ काय जीवो के साथ

(अच्छणजोएण) अहिसक योगपूर्वक (होयव्वय सिया) बर्ताव करना चाहिये (एव) ऐसा करने से ही (सजए) वह मुनिपद के योग्य (हवइ) होता है।।3।।

पुढवि भित्ति सिल लेलु, नेव भिदे न सलिहे।
तिविहेण करणजोएण, सजए सुसमाहिए।।4।।

अन्वयार्थ– (सुसमाहिए) चारित्र की आराधना मे सावधान समाधिवत (सजए) मुनि (पुढवि) सचित्त पृथ्वी को (भित्ति) भीत को (सिल) शिला को (लेलु) मिट्टी के ढेले को (तिविहेण करण जोएण) तीन करण तीन योग से अर्थात् मन, वचन, काया द्वारा करना, कराना, अनुमोदना रूप से (नेव) न तो (भिदे) भेदे-टुकडा करे और (न सलिहे) न घिसे अर्थात् उन पर लकीर न खीचे।।4।।

सुद्धपुढवी न निसीए, ससरक्खम्मि य आसणे।
पमज्जित्तु निसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गहं।।5।।

अन्वयार्थ– (सुद्ध पुढवी) शस्त्र से अपरिणत-सचित्त पृथ्वी पर (य) और (ससरक्खम्मि) सचित्त रज से भरे हुए (आसणे) आसनादि पर (न निसीए) मुनि न बैठे किन्तु यदि अचित्त भूमि हो तो (जस्स) उसके स्वामी की (उग्गह) अनुज्ञा (जाइत्ता) लेकर (पमज्जित्तु) रजोहरण से पूजकर (निसीइज्जा) बैठे।।5।।

सीओदग न सेविज्जा, सिला वुट्ठ हिमाणि य।
उसिणोदग तत्त फासुयं, पडिगाहिज्ज सजए।।6।।

अन्वयार्थ– (सजए) साधु (सीओदग) नदी, कुए, तालाब आदि के सचित्त जल (सिला) ओले-गडे (वुट्ठ) बरसात का जल (य) और (हिमाणि) बर्फ– इन सब का (न सेविज्जा) सेवन न करे किन्तु (तत्तफासुय) तप्त प्रासुक (उसिणोदग) उष्ण जल एव प्रासुक धोवन–पानी को ही (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे।।6।।

उदउल्ल अप्पणो काय, नेव पुंछे न संलिहे।
समुप्पेह तहाभूय, नो णं संघट्टए मुणी।।7।।

अन्वयार्थ– किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर गये हुए मुनि का (अप्पणो) अपना (काय) शरीर (उदउल्ल) यदि कदाचित् बरसात पडने से भीग जाय तो अप्काय के जीवो की रक्षा के लिए (मुणी) मुनि (ण)-अपने शरीर को (नेव पुछे) न तो वस्त्रादि से पोछे और (न सलिहे) न अपने हाथो से देह को मले किन्तु (तहा भूय) अपने शरीर को जल से भीगा हुआ (समुप्पेह) देख कर साधु अपने शरीर का (नो सघट्टए) सघट्टा-स्पर्श भी न करे।।7।।

इंगालं अगणिं अच्चि, अलायं वा सजोइयं।
न उंजिज्जा न घट्टिज्जा, नो णं निव्वावए मुणी।।8।।

अन्वयार्थ– (मुणी) मुनि (इगाल) अङ्गारे को (अगणि) अग्नि को (अच्चि) ज्वालासहित अग्नि को (वा) अथवा (सजोइय) अग्नि सहित (अलाय) अधजले काठ को (न उंजिज्जा) अधिक न जलावे (न घट्टिज्जा) सघट्टा न करे और (नो) न (ण) उस अङ्गारादि को (निव्वावए) पानी आदि से बुझावे।।8।।

तालियंटेण पत्तेण, साहाए विहुयणेण वा।
न वीइज्जऽप्पणो कायं, बाहिर वावि पुग्गलं।।9।।

अन्वयार्थ– (तालियटेण) ताड वृक्ष के पखे से (पत्तेण) पत्तो से (साहाए) वृक्ष की शाखा से (वा) अथवा (विहुयणेण) पखे से अथवा वस्त्रादि से मुनि (अप्पणो) अपने (काय) शरीर पर (न वीइज्ज) हवा न करे (वावि) इसी प्रकार (बाहिर) बाहरी (पुग्गल) पदार्थो को अर्थात् गर्म दूध आदि को ठडा करने के लिए हवा भी न करे।।9।।

तणरुक्खं न छिंदिज्जा, फलं मूल च कस्सई।
आमगं विविहं बीय, मणसा वि न पत्थए।।10।।

अन्वयार्थ– साधु (तणरुक्ख) तृण-घास, वृक्षादि को तथा (कस्सई) किसी वृक्षादि के (फल) फल (च) और (मूल) जड को (न

छिदिज्जा) न काटे तथा (विविह) नाना प्रकार के (आमग) सचित्त (बीय) बीजो का सेवन करने की (मणसावि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे।।10।।

गहणेसु न चिट्ठिज्जा, बीएसु हरिएसु वा।
उदगम्मि तहा निच्च, उत्तिग पणगेसु वा।।11।।

अन्वयार्थ– (गहणेसु) वृक्षो के कुज मे एव गहन वन मे (बीएसु) बीजो पर (वा) अथवा (हरिएसु) दूब आदि हरित काय पर (तहा) तथा (उदगम्मि) उदक नाम की वनस्पति पर अथवा जहा जल फैला हुआ हो ऐसी जगह पर (वा) तथा (उत्तिग) सर्पच्छत्रा-सर्प के छत्र के आकार वाली वनस्पति पर तथा (पणगेसु) पनक उल्लि नामक वनस्पति विशेष पर एव लीलन-फूलन पर (निच्च) कभी भी (न चिट्ठिज्जा) खडा न रहे तथा न बैठे और न सोवे।।11।।

तसे पाणे न हिंसिज्जा, वाया अदुव कम्मुणा।
उवरओ सव्व भूएसु, पासेज्ज विविहं जगं।।12।।

अन्वयार्थ– (तसे) द्वीन्द्रियादि त्रस (पाणे) प्राणियो की (वाया) वचन से (कम्मुणा) काया से (अदुव) अथवा मन से भी (न हिंसिज्जा) हिसा न करे किन्तु (सव्वभूएसु) प्राणीमात्र पर (उवरओ) समभाव रखता हुआ (विविह) नाना प्रकार के त्रस-स्थावर रूप (जग) ससार को (पासेज्ज) ज्ञानदृष्टि से देखे अर्थात् ऐसा विचार करे कि नरक तिर्यचादि गतियो मे जीव कर्मो के वश होकर नाना दुख पा रहे है।।12।।

अट्ठ सुहुमाइं पेहाए, जाइ जाणित्तु सजए।
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा।।13।।

अन्वयार्थ– (सजए) साधु (जाइ) जिन–आगे कहे जाने वाले (अट्ठ) आठ प्रकार के (सुहुमाइ) सूक्ष्म जीवो को (जाणित्तु) जानने से (भूएसु) जीवो पर (दयाहिगारी) दया का अधिकारी होता है– उन

जीवो को (पेहाए) भली-भाति देखकर (आस) बैठे (चिट्ठ) खडा रहे (वा) अथवा (सएहि) सोवे।।13।।

कयराइ अट्ठ सुहुमाइं, जाइं पुच्छिज्ज संजए।
इमाइं ताइं मेहावी, आइक्खिज्ज वियक्खणो।।14।।

अन्वयार्थ– (सजए) सयती शिष्य (पुच्छिज्ज) प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! (जाइ) जिन जीवो को जानने से मुनि दया का अधिकारी होता है वे (अट्ठ सुहुमाइ) आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव (कयराइ) कौन से है ? (मेहावी) बुद्धिमान् (वियक्खणो) विचक्षण गुरु (आइक्खिज्ज) कहते है कि (ताइ) वे (इमाइ) ये है।।14।।

सिणेहं पुप्फ सुहुम च, पाणुत्तिंगं तहेव य।
पणगं बीय हरियं च, अंड सुहुमं च अट्ठमं।।15।।

अन्वयार्थ– (सिणेह) ओस, बर्फ, धुअर, ओले आदि (च) और (पुप्फसुहुम) बड और उदुम्बर आदि के फूल जो सूक्ष्म तथा उसी रग के होने से जल्दी नजर नही आते (तहेव) उसी प्रकार (पाण) कुन्थुआ आदि सूक्ष्म जीव जो चलते हुए ही दिखाई देते हैं, स्थिर नजर नही आते (य) और (उत्तिग) कीडीनगरा-कीडियो का बिल (पणग) चौमासे मे भूमि और काठ आदि पर होने वाली पाच रग की लीलन-फूलन (बीय) शाली आदि बीज का अग्रभाग जिससे अकुर उत्पन्न होता है (च) और (हरिय) नवीन उत्पन्न हुई हरितकाय- जो पृथ्वी के समान वर्ण वाली होती है (च) और (अट्ठम) आठवा (अडसुहुम) अण्डसूक्ष्म अर्थात् मक्खी, कीडी, छिपकली आदि के सूक्ष्म अण्डे- ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं।।15।।

एव मेयाणि जाणित्ता, सव्व भावेण संजए।
अप्पमत्तो जए निच्चं, सव्विंदिय समाहिए।।16।।

अन्वयार्थ– (सजए) साधु (एव) इस प्रकार (एयाणि) पूर्वोक्त आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवो को (जाणित्ता) जानकर (सव्विदिय

समाहिए) सब इन्द्रियो का दमन करता हुआ एव (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित होकर (निच्च) हमेशा (सव्वभावेण) सब भावो से-तीन करण तीन योग से (जए) इनकी यतना करने मे सावधान रहे।।16।।

धुव च पडिलेहिज्जा, जोगसा पायकबल।
सिज्ज मुच्चार भूमि च, सथार अदुवाऽऽसण।।17।।

अन्वयार्थ– साधु (पायकबल) पात्र और कबल (सिज्ज) शय्या (च) और (उच्चारभूमि) उच्चारभूमि–मलादि त्यागने का स्थान (सथार) बिछौना (अदुवा) अथवा (आसण) पीठ फलकादि आसन– इन सबका (जोगसा) एकाग्र चित्त से (च) और (धुव) नित्य नियमपूर्वक यथासमय (पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे।। 17।।

उच्चारं पासवण, खेलं सिंघाण जल्लिय।
फासुय पडिलेहित्ता, परिट्ठाविज्ज संजए।। 18।।

अन्वयार्थ– (सजए) साधु (फासुय) जीवरहित स्थान की (पडिलेहित्ता) प्रतिलेखना करके वहा (उच्चार) विष्ठा (पासवण) मूत्र (खेल) कफ और (सिघाणजल्लिय) नाक का मैल आदि (परिट्ठाविज्ज) यतनापूर्वक परठवे।।18।।

पविसित्तु परागार, पाणट्ठा भोयणस्स वा।
जयं चिट्ठे मिय भासे, न य रूवेसु मणं करे।।19।।

अन्वयार्थ– (पाणट्ठा) पानी के लिए (वा) अथवा (भोयणस्स) भोजन के लिए (परागार) गृहस्थ के घर मे (पविसित्तु) प्रवेश करके साधु (जय) यतनापूर्वक खडा रहे तथा (मिय) आवश्यकतानुसार परिमित (भासे) वचन बोले (य) और (रूवेसु) वहा स्त्रियादि के रूप–सौन्दर्य को देखकर (मण) मन को (न करे) चचल न होने दे।।19।।

बहुं सुणेइ कन्नेहि, बहुं अच्छीहि पिच्छइ।
न य दिट्ठ सुय सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ।।20।।

अन्वयार्थ– (भिक्खू) साधू (कन्नेहि) कानो से (बहु) बहुत–कुछ बुरी–भली बाते (सुणेइ) सुनता है (य) तथा (अच्छीहि) आखो से (बहु) बहुत–कुछ भले–बुरे पदार्थों को (पिच्छइ) देखता है किन्तु (दिट्ठ) देखी हुई (सुय) खुली हुई (सव्व) सब बाते (अक्खाउ) किसी से कहना (न अरिहइ) साधु को उचित नही है।। 20।।

सुयं वा जइ वा दिट्ठं, न लविज्जोवघाइयं।
न य केणइ उवाएणं,गिहिजोगं समायरे।। २१।।

अन्वयार्थ– (सुय वा) सुनी हुई (जइ वा) अथवा (दिट्ठ) देखी हुई बात (उवघाइय) किसी भी प्राणी को द्रव्य भाव से पीडा पहुचाने वाली हो तो (न लविज्ज) साधु न कहे (य) ओर (केणइ-केण) किसी भी (उवाएण) कारण से (गिहिजोग) गृहस्थ का कार्य अर्थात् उसके बच्चो को खेलाना आदि कार्य (न समायरे) कदापि न करे।।21।।

निट्ठाणं रसनिज्जूढं, भद्दगं पावगं ति वा।
पुट्ठो वावि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे।।22।।

अन्वयार्थ– (पुट्ठो) किसी के पूछने पर (वावि) अथवा (अपुट्ठो) बिना पूछे साधु (निट्ठाण) सरस आहार मिला हो तो उसे (भद्दग) यह आहार तो अच्छा है (ति) इस प्रकार (न निद्दिसे) न कहे (वा) अथवा (रसनिज्जूढ) नीरस आहार मिला हो तो उसे (पावग) यह आहार तो बुरा है इस प्रकार न कहे (वा) और इसी तरह (लाभालाभ) आज तो आहार खूब मिला है अथवा आज आहार नहीं मिला हे इस प्रकार आहार के लाभालाभ के विपय मे साधु कुछ न कहे।।22।।

न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उछं अयंपिरो।
अफासुयं न भुंजिज्जा, कीयमुद्देसियाहडं।।23।।

अन्वयार्थ– (भोयणम्मि) भोजन मे (गिद्धो) गृद्ध होकर साधु केवल धनसम्पन्न गृहस्थो के घर ही (न चरे) गोचरी के लिए न जावे किन्तु (उछ) ज्ञात-अज्ञात कुल मे एव गरीब और धनवान् दोनो

प्रकार के दाताओ के घर मे (चरे) समान भव से गोचरी जावे (य) और (अयपिरो) दाता को अवगुणवाद न बोलता हुआ जो-कुछ मिल जाय उसी मे सतुष्ट रहे (अफासुय) सचित्त, मिश्र आदि अप्रासुक (कीय) साधु के लिए खरीदा हुआ (उद्देसिय) साधु के निमित्त बनाया हुआ (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ आहारादि ग्रहण न करे किन्तु यदि कदाचित् भूल से ग्रहण कर लिया गया हो तो उसे (न भुजिज्जा) न भोगवे।।23।।

सनिहि च न कुव्विज्जा, अणुमाय-पि सजए।
मुहाजीवी असबद्धे, हविज्ज जगनिस्सिए।।24।।

अन्वयार्थ— (सजए) साधु (अणुमाय-पि) अणुमात्र भी (सनिहि) घी, गुड आदि पदार्थो का सचय (न कुव्विज्जा) न करे किन्तु (मुहाजीवी) नि स्वार्थभाव से एव सावद्य व्यापार के बिना भिक्षा लेकर सयमी जीवन व्यतीत करने वाला (असबद्धे) गृहस्थो के प्रतिबन्ध से मुक्त (च) और (जगनिस्सिए) छ काय जीवो का रक्षक (हविज्ज) बने।।24।।

लूहवित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया।
आसुरत्त न गच्छिज्जा, सुच्चा णं जिणसासणं।।25।।

अन्वयार्थ— साधु (लूहवित्ती) रूखा-सूखा खाकर सयम निर्वाह करने वाला (सुसतुट्ठे) जैसा रूखा-सूखा निर्दोष आहार मिले उसी मे सतुष्ट रहने वाला (अप्पिच्छे) अल्प इच्छा वाला और (सुहरे) किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुचा कर अल्प आहार से ही सतोष करने वाला अर्थात् ऊनोदरी आदि तप करने वाला (सिया) हो और (ण) क्रोधादि के कटु परिणामो को बताने वाले (जिणसासण) जिनशासन को- जिनवचनो को (सुच्चा) सुनकर (आसुरत्त) किसी के प्रति क्रोध (न गच्छिज्जा) न करे।।25।।

कन्नसुक्खेहिं सद्देहि, पेम्मं नाभिनिवेसए।
दारुणं कक्कस फासं, काएण अहियासए।।26।।

अन्वयार्थ– साधु (कन्नसुक्खेहि) कानो को प्रिय लगने वाले (सद्देहि) शब्दो मे (पेम्म) रागभाव (नाभिनिवेसए) न करे और इसी प्रकार (दारुण) दु खजनक एव (कक्कस) कठोर (फास) स्पर्श को (काएण) शरीर से (अहियासए) सहन करे किन्तु द्वेष न करे अर्थात मनोज्ञ शब्दादि विषयो मे साधु को रागभाव और अमनोज्ञ शब्दादि विषयो मे द्वेष न करना चाहिए।।26।।

खुहं पिवासं दुस्सिज्जं, सीउण्हं अरइं भयं।
अहियासे अव्वहिओ, देहदुक्खं महाफलं।।27।।

अन्वयार्थ– साधु (खुह) भूख (पिवास) प्यास (दुस्सिज्ज) विषम भूमि वाला निवास स्थान (सीउण्ह) सर्दी और गरमी (अरइ) अरति और (भय) चोर व्याघ्रादि का भय- इन सब परीषहो को (अव्वहिओ) अदीन भाव से (अहियासे) सहन करे क्योकि (देहदुक्ख) शारीरिक कष्टो को समभावपूर्वक सहन करने से ही (महाफल) मोक्ष रूपी महाफल की प्राप्ति होती है।

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहार माइयं सव्वे, मणसा वि न पत्थए।।28।।

अन्वयार्थ– (आइच्चे) सूर्य के (अत्थगयम्मि) अस्त हो जाने पर (य) और (पुरत्था अणुग्गए) प्रात काल सूर्य के उदय न होने तक (सव्व) सब प्रकार के (आहारमाइय-आहारमइय) आहारादि की साधु (मणसावि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे, तो फिर वचन और काया की तो बात ही क्या ?।।28।।

अतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे।
हविज्ज उअरे दंते, थोवं लद्धुं न खिंसए।।29।।

अन्वयार्थ– (अतितिणे) तिनतिनाहट न करता हुआ अर्थात आहारादि के न देने पर भी गृहस्थ का अवर्णवाद न बोलने वाला (अचवले) चपलतारहित (अप्पभासी) अल्पभापी (मियासणे) परिमित

आहार करने वाला-अल्पाहारी (उअरे दते) उदर का दमन करने वाला अर्थात् भूख-प्यास आदि परीषहो को समभावपूर्वक सहन करने वाला (हविज्ज) होवे तथा (थोव) थोडा आहार (लद्धु) मिलने पर (न खिसए) खीझे नही अर्थात् दाता की अथवा उस पदार्थ की निन्दा न करे।।29।।

न बाहिरं परिभवे, अत्ताण न समुक्कसे।
सुयलाभे न मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सिबुद्धिए।।30।।

अन्वयार्थ– साधु (बाहिर) किसी भी व्यक्ति का (न परिभवे) अपमान–तिरस्कार न करे और (अत्ताण न समुक्कसे) न आत्मप्रशसा करे (सुयलाभे) श्रुतज्ञान की प्राप्ति होने पर श्रुतज्ञान का (जच्चा) जाति का (तवस्सिबुद्धिए) तप का और बुद्धि का (न मज्जिज्जा) मद न करे अर्थात् कुल, बल, रूप, ऐश्वर्य आदि किसी का मद न करे।।30।।

से जाणमजाण वा, कट्टु आहम्मियं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाण, बीय तं न समायरे।।31।।

अन्वयार्थ– (जाण) जानते हुए (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से प्रमादवश (आहम्मिय) यदि कदाचित् कोई अधार्मिक (पय) कार्य (कट्टु) हो जाय तो (से) निर्ग्रन्थाचार का पालन करने वाला मुनि उसे छिपाने की चेष्टा न करे किन्तु (खिप्प) शीघ्र–तत्काल (अप्पाण) प्रायश्चित्त द्वारा उस पाप को दूर कर अपनी आत्मा को (सवरे) निर्मल बना ले और (बीय) फिर दुबारा (त) वैसा पाप कार्य- वैसी भूल (न समायरे) न होने पावे उसके लिए सावधान रहे।।31।।

अणायारं परक्कम्म, नेव गूहे न निण्हवे।
सुई सया वियडभावे, असंसत्ते जिइंदिए।।32।।

अन्वयार्थ– (सुई) निर्मल बुद्धि वाले (वियडभावे) सरल चित्त वाले (असंसत्ते) विषयो की आसक्तिरहित और (सया) सदा (जिइंदिए)

इन्द्रियो को वश मे रखने वाले मुनि को अनाचार का सेवन न करना चाहिए किन्तु प्रमादवश (अणायार) अनाचार का (परक्कम्म) सेवन हो गया हो तो गुरु महाराज के पास आलोचना कर उसका प्रायश्चित्त ले, किन्तु आलोचना करते समय (नेव गूहे) अधूरी बात कह कर उसे छिपाने की कोशिश न करे और (न निण्हवे) न असली बात को छिपाने के लिए मायाचार का सेवन करे किन्तु जो बात जिस तरह से हुई हो, उसे उसी रूप मे, ज्यो की त्यो कह दे।।32।।

अमोहं वयणं कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए।।33।।

अन्वयार्थ– (महप्पणो) ज्ञानादि गुणो के धारक महात्मा (आयरियस्स) आचार्य महाराज के (वयण) वचन को– आज्ञा को (अमोह) सफल (कुज्जा) करे अर्थात् (त) आचार्य महाराज की आज्ञा को (वायाए) 'तहत्ति आपकी आज्ञा शिरोधार्य है' इत्यादि आदरसूचक शब्दो से (परिगिज्झ) स्वीकार करे किन्तु केवल वचनो द्वारा स्वीकार कर ही न रह जाय अपितु उस आज्ञा को (कम्मुणा) कार्य द्वारा (उववायए) अपने आचरण मे लावे।।33।।

अधुवं जीवियं नच्चा, सिद्धिमग्गं वियाणिया।
विणिअट्टिज्ज भोगेसु, आउं परिमियमप्पणो।।34।।

अन्वयार्थ– (जीविय) इस जीवन को (अधुव) अस्थिर एव क्षणभगुर (नच्चा) जानकर तथा (अप्पणो) अपने (आउ) आयुष्य को (परिमिय) परिमित-थोडा जानकर अर्थात् न जाने क्षण मे क्या हो जायगा ऐसा जानकर तथा (सिद्धिमग्ग) सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग को (वियाणिया) कल्याणकारी समझ कर साधु (भोगेसु) कामभोगो से (विणिअट्टिज्ज) सर्वथा निवृत्त हो जाय।।34।।

बलं थाम च पेहाए, सद्धामारुग्गमप्पणो।
खित्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए।।35।।

अन्वयार्थ– (अप्पणो बल) अपने मानसिक बल को (च) और (थाम) शारीरिक बल को तथा (सद्धा) श्रद्धा-दृढता को और (आरुग्ग) आरोग्य–तन्दुरुस्ती को (पेहाए) देखकर (च) तथा (खित्त काल) द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव को (विन्नाय) जानकर (तहप्पाण) जैसा अपना बलादि देखे उसी प्रकार अपनी आत्मा को (निजुजए) तपश्चर्यादि धर्मकार्य मे लगावे किन्तु प्रमाद न करे। ।35।।

जरा जाव न पीडेई, वाही जाव न वड्ढई।
जाविदिया न हायति, ताव धम्म समायरे। ।36।।

अन्वयार्थ– महापुरुष फरमाते है कि हे आर्यो ! (जाव) जब तक (जरा) बुढापा-जरा रूपी राक्षसी (न पीडेई) पीडित नहीं करती अर्थात् तुम्हारे शरीर को जर्जरित नही बना डालती (जाव) जब तक (वाही) व्याधि-नाना प्रकार के रोग (न वड्ढई) वृद्धि को प्राप्त करके तुम्हारे शरीर को नहीं घेर लेते और (जाव) जब तक (इदिया) श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रिया (न हायति) शक्तिहीन होकर शिथिल नही हो जाती (ताव) तब तक- इससे पहले-पहले (धम्म) श्रुत–चारित्र रूप धर्म का (समायरे) आचरण कर लेना चाहिए अर्थात् जब तक धर्म का साधनभूत यह शरीर स्वस्थ एव सुदृढ बना हुआ है तब तक धार्मिक क्रियाओ का खूब आचरण कर लेना चाहिए क्योकि उपरोक्त अङ्गो मे से किसी भी अङ्ग की हानि हो जाने पर फिर यथावत् धर्म का आचरण नही हो सकता। ।36।।

कोहं माण च माय च, लोभं च पाव वड्ढण।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो। ।37।।

अन्वयार्थ– (अप्पणो) अपनी आत्मा का (हिय) हित (इच्छतो) चाहने वाले साधु को (पाववड्ढण) पाप को बढाने वाले (कोह) क्रोध (च) तथा (माण) मान (माय) माया (च) और (लोभ) लोभ इन (चत्तारि) चार (दोसे) दोषो का (उ) अवश्य ही (वमे) त्याग कर देना चाहिए। ।37।।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो।।38।।

अन्वयार्थ— (कोहो) क्रोध (पीइ) प्रीति का (पणासेइ) नाश कर देता है (माणो) मान-अहकार भाव (विणयनासणो) विनय का नाश कर देता है (माया) माया-कपटाई (मित्ताणि) मित्रता का (नासेइ) नाश कर देती है और (लोभो) लोभ (सव्वविणासणो) सभी सद्‌गुणो का नाश कर देता है।।38।।

उवसमेण हणे कोह, माण मद्दवया जिणे।
मायं अज्जव-भावेण लोभं संतोसओ जिणे।।39।।

अन्वयार्थ— (कोह) क्रोध को (उवसमेण) क्षमा रूपी खड्ग से (हणे) नष्ट करे (माण) मान को (मद्दवया) मृदुता-विनय भाव से (जिणे) जीते (माय) माया को (अज्जवभावेण) सरलता से जीते (च) और (लोभ) लोभ को (सतोसओ) सतोष से (जिणे) जीते।।39।।

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स।।40।।

अन्वयार्थ— (कोहो) क्रोध (य) और (माणो य) मान ये दोनो (अणिग्गहीया) क्षमा और विनय से शान्त न किये गये हो (य) और (माया) माया (य) तथा (लोभो) लोभ ये दोनो (पवड्ढमाणा) सरलता और सतोष रूपी सद्‌गुणो को धारण न करने से बढ रहे हो तो (कसिणा) आत्मा को मलिन बनाने वाले (एए) ये (चत्तारि) चारो (कसाया) कषाय (पुणब्भवस्स) पुनर्जन्म रूपी विषवृक्ष की (मूलाइ) जडो को (सिचति) सींचते है, अर्थात् ये चारो कषाय जन्म-मरण रूपी ससार को बढाते है।।40।।

रायणिएसु विणयं पउंजे, धुव सीलयं सययं न हावइज्जा।
कुम्मुव्व अल्लीणपलीण गुत्तो, परक्कमिज्जा, तव संजमम्मि।।41।।

अन्वयार्थ— (रायणिएसु) रत्नाधिक अर्थात् दीक्षा मे अपने से बडे, चारित्रवृद्ध और ज्ञानवृद्ध गुरुजनो का (विणय) विनय (पउंजे)

करे (धुवसीलय) अपने उच्च चारित्र का अर्थात् अठारह हजार शीलाङ्ग का (सयय) कदापि (न हावइज्जा) त्याग न करे ओर (कुम्मुव्व) कछुए की भाति (अल्लीणपलीणगुत्तो) अपने समस्त अङ्गोपाङ्गो को वश मे रखता हुआ साधु (तवसजमम्मि) तप-सयम मे (परक्कमिज्जा) उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करे।।41।।

निद्द च न बहु मन्निज्जा, सप्पहास विवज्जए।
मिहो कहाहिं न रमे, सज्झायम्मि रओ सया।।42।।

अन्वयार्थ–साधु (निद्द) निद्रा का (न बहुमन्निज्जा) बहुत आदर न करे अर्थात् अधिक न सोवे (च) और (सप्पहास) अधिक हसी–मजाक करना (विवज्जए) त्याग दे (मिहो कहाहि) परस्पर इधर–उधर की बाते करने मे (न रमे) चित्त न लगावे किन्तु (सया) सदा (सज्झायम्मि) वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप स्वाध्याय मे (रओ) रत रहे।। 42।।

जोगं च समणधुम्मम्मि, जुंजे अणलसो धुव।
जुत्तो य समणधम्मम्मि, अट्ठं लहइ अणुत्तरं।। 43।।

अन्वयार्थ– (अणलसो) आलस्य का सर्वथा त्याग करके (जोग) मन, वचन, काया रूप तीन योगो को (च) और कृत, कारित, अनुमोदन रूप तीन करण को (समण धम्मम्मि) क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, सयम, सत्य, शौच, अकिचनत्व और ब्रह्मचर्य रूप दस श्रमण धर्म मे (धुव) निरन्तर (जुजे) लगावे (य) क्योकि (समणधम्मम्मि) श्रमण धर्म मे (जुत्तो) लगा हुआ मुनि (अणुत्तर) सर्वोत्कृष्ट (अट्ठ) अर्थ को-मोक्ष को (लहइ) प्राप्त कर लेता है।।43।।

इहलोगपारत्तहियं, जेण गच्छइ सुग्गइ।
बहुस्सुयं पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थ विणिच्छयं।।44।।

अन्वयार्थ– (जेण) जिससे (इहलोगपारत्तहिय) इस लोक मे और परलोक मे हित होता है तथा (सुग्गइ) सुगति की (गच्छइ) प्राप्ति होती है- ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधु (बहुस्सुय)

आगमो के मर्म को जानने वाले बहुश्रुत मुनि की (पज्जुवासिज्जा) पर्युपासना-सेवा-शुश्रूषा करे और सेवा–शुश्रूषा करता हुआ (पुच्छिज्ज) प्रश्न पूछ-पूछ कर (अत्थविणिच्छय) पदार्थो का यथार्थ निश्चय करे।।44।।

हत्थं पाय च कायं च, पणिहाय जिइंदिए।
अल्लीणगुत्तो निसिए, सगासे गुरुणो मुणी।।45।।

अन्वयार्थ– (जिइदिए) जितेन्द्रिय (मुणी) मुनि (हत्थ) हाथ (च) और (पाय) पैर (च) तथा (काय) शरीर को (पणिहाय) जिस प्रकार गुरु महाराज का अविनय न हो उस प्रकार से सकोच कर तथा (अल्लीणगुत्तो) मन, वचन, काया से सावधान होकर (गुरुणो) गुरु के (सगासे) समीप (निसिए) बैठे।।45।।

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ।
न य उरुं समासिज्जा, चिट्ठिज्जा गुरुणंतिए।।46।।

अन्वयार्थ– (किच्चाण) आचार्य महाराज के (पक्खओ) पसवाडे की तरफ अर्थात् शरीर से शरीर चिपा कर (न चिट्ठिज्जा) न बैठे और (न पुरओ) न एकदम मुख के नजदीक बैठे (नेव पिट्ठओ) तथा पीठ पीछे भी न बैठे (य) और (गुरुणतिए) गुरु के सामने (उरु) पेर पर पैर (न समासिज्जा) रखकर न बैठे अथवा रतनाधिको की जघा से जघा सटाकर न बैठे अर्थात् अविनयसूचक आसनो से न बैठे।।46।।

अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए।।47।।

अन्वयार्थ– विनीत शिष्य (अपुच्छिओ) गुरु महाराज के विना पूछे और (भासमाणस्स) गुरु महाराज जब किसी से बातचीत कर रहे हो तब (अतरा) बीच-बीच मे (न भासिज्जा) न बोले और (पिट्ठिमस) किसी की पीठ पीछे निन्दा (न खाइज्जा) न करे और (मायामोस) कपटसहित झूठ भी (विवज्जए) न बोले।।47।।

अप्पत्तिय जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो।
सव्वसो त न भासिज्जा, भासं अहियगामिणिं।।48।।

अन्वयार्थ– (जेण) जिस भाषा के बोलने से (अप्पत्तिय) अप्रीति-द्वेष या अविश्वास (सिया) पैदा हो (वा) अथवा जिससे (परो) दूसरा व्यक्ति (आसु) शीघ्र (कुप्पिज्ज) कुपित हो जाता हो तो (त) उस प्रकार की (अहियगामिणि) अहित करने वाली (भास) भाषा साधु (सव्वसो) कभी (न भासिज्जा) न बोले।।48।।

दिट्ठ मिय असदिद्ध, पडिपुन्न विय जिय।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भास निसिर अत्तव।।49।।

अन्वयार्थ– (अत्तव) आत्मज्ञानी साधु (दिट्ठ) साक्षात् देखी हुई (मिय) परिमित (असदिद्ध) सन्देहरहित (पडिपुन्न) पूर्वापर सम्बन्ध सहित (विय) स्पष्ट अर्थ वाली (जिय) चालू विषय का प्रतिपादन करने वाली (अयपिर) वाचालता से रहित (अणुव्विग) किसी को उद्वेग-पीडा न पहुचाने वाली (भास) भाषा (निसिर) बोले।।49।।

आयारपन्नत्ति धरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं।
वाय विक्खलिय नच्चा, न त उवहसे मुणी।।50।।

अन्वयार्थ– (आयारपन्नत्तिधर) आचाराग व्याख्या प्रज्ञप्ति आदि के ज्ञाता अथवा आचारधर- स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग आदि का ज्ञान रखने वाला और प्रज्ञप्तिधर-स्त्रीलि-पुल्लि आदि के विशेषणो को विशेष रूप से जानने वाला और (दिट्ठिवाय) दृष्टिवाद का (अहिज्जग) अध्ययन करने वाला अथवा प्रकृति, प्रत्यय, लोप, आगम, वर्णविकार, लकार आदि व्याकरण के सभी अङ्गो को भली प्रकार जानने वाले मुनि भी यदि कदाचित् (वायविक्खलिय) बोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाय अर्थात् लिङ्गादि से अशुद्ध शब्द का प्रयोग कर बैठे तो (नच्चा) उनके अशुद्ध वचन को जानकर (मुणी) साधु (त) उन महापुरुषो का (न उवहसे) उपहास न करे।।50।।

नक्खत्तं सुमिणं जोगं, निमित्तं मंत भेसजं।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं।।51।।

अन्वयार्थ– (नक्खत्त) नक्षत्र विद्या (सुमिण) स्वप्नो का शुभाशुभ फल बतलाने वाली विद्या (जोग) वशीकरणादि चूर्ण योग (निमित्त) भूत, भविष्य का फल बताने वाली निमित्त विद्या (मत) भूत वगैरह निकालने की मत्र-विद्या (भेसज) अतिसार आदि रोगो की औषधि (त) ये सब बाते साधु (गिहिणो) गृहस्थों को (न आइक्खे) न बतावे क्योकि ये (भूयाहिगरण) प्राणियो के अधिकरण के (पय) स्थान हैं अर्थात् इनकी प्ररूपणा करने से छ काय जीवो की हिसा होती है।।51।।

अन्नट्ठं पगडं लयणं, भइज्ज सयणासणं।
उच्चार भूमिसंपन्नं, इत्थीपसु विवज्जियं।।52।।

अन्वयार्थ– (लयण) जो मकान (अन्नट्ठ) गृहस्थ ने अपने निज के लिए (पगड) बनाया हो अर्थात् जो मकान साधु का निमित्त रखकर नहीं बनाया गया हो तथा (उच्चार-भूमिसपन्न) जिसमे मल–मूत्रादि परठवने के लिए स्थान हो और (इत्थीपसुविवज्जिय) जो मकान स्त्री, पशु, पण्डक आदि से रहित हो ऐसे मकान मे साधु (भइज्ज) ठहरे और इसी तरह (सयणासण) जो शय्या तथा पाट-पाटलादि गृहस्थ ने अपने लिए बनाये हो अर्थात् साधु के लिए नही बनाये हो उन्हे साधु अपने उपयोग में ले सकता है।।52।।

विवित्ता य भवे सिज्जा, नारीणं न लवे कहं।
गिहि संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं।।53।।

अन्वयार्थ– (सिज्जा) यदि स्थानक (विवित्ता) विवित्त (भवे) हो अर्थात् वहा साधु अकेला ही हो तो (नारीणं) स्त्रियो के साथ (कह) बातचीत (न लवे) न करे तथा उन्हे धर्मकथादि भी न सुनावे (य) तथा (गिहि सथवं) गृहस्थो के साथ अतिपरिचय भी (न कुज्जा)

न करे किन्तु (साहूहि) साधुओ के साथ ही (सथव) परिचय (कुज्जा) करे।।53।।

जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्च कुललओ भय।
एव खु बभयारिस्स, इत्थी विग्गहओ भयं।।54।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (कुक्कुड पोयस्स) मुर्गी के बच्चे को (निच्च) हमेशा (कुललओ) बिल्ली से (भय) भय बना रहता है (एव खु) उसी प्रकार (बभयारिस्स) ब्रह्मचारी पुरुष को (इत्थीविग्गहओ) स्त्री के शरीर से सदा (भय) भय मानते रहना चाहिए।।54।।

चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलकियं।
भक्खरं पिव दट्ठूणं, दिट्ठि पडि समाहरे।।55।।

अन्वयार्थ– साधु (चित्तभित्ति) स्त्री के चित्रो से युक्त भींत को (वा) अथवा (सुअलकिय-सअलकिय) अच्छे वस्त्राभूषणो से सजी हुई एव बिना 'सजी हुई (नारिं) कैसी भी स्त्री को (न निज्झाए) अनुरागपूर्वक न देखे। यदि कदाचित् अकस्मात् उधर दृष्टि पड जाय तो (भक्खर पिव) जिस प्रकार सूर्य को (दट्ठूण) देखकर लोग अपनी दृष्टि को तत्काल हटा लेते है उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष भी (दिट्ठि) अपनी दृष्टि को (पडिसमाहरे) तत्काल पीछी हटा लेवे क्योकि जिस प्रकार सूर्य की तरफ अधिक देर तक देखने से दृष्टि निर्बल हो जाती है ठीक उसी प्रकार स्त्री की तरफ अनुरागपूर्वक देखने से चारित्र मे निर्बलता आ जाती है।।55।।

हत्थपाय-पलिच्छिन्नं, कण्णनासविगप्पिय।
अवि वाससय नारिं, बभयारी विवज्जए।।56।।

अन्वयार्थ– (हत्थपाय पलिच्छिन्न-पडिच्छिन्न) जिस स्त्री के हाथ-पैर कट गये हो और (कण्णनासविगप्पिय) कान-नाक कटी हुई हो अथवा विकृत हो गई हो (अविवाससय) जो सौ वर्ष की आयु

वाली पूर्ण वृद्धा एव जर्जरित शरीर वाली हो गई हो (नारि) ऐसी स्त्रियो के ससर्ग को भी (बभयारी) ब्रह्मचारी साधु (विवज्जए) त्याग दे अर्थात् स्त्रियो का ससर्ग कदापि न करे।।56।।

विभूसा इत्थीसंसग्गो, पणीयं रसभोयण।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउड जहा।।57।।

अन्वयार्थ– (अत्तगवेसिस्स) आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले (नरस्स) ब्रह्मचारी पुरुष के लिए (विभूसा) शरीर की शोभा (इत्थीससग्गो) स्त्री का ससर्ग (पणीय रसभोयण) पोष्टिक आहार ये सब (तालउड) तालपुट नामक (विस) उग्र विष के (जहा) समान है अर्थात् जिस प्रकार तालपुट नाम का विष तालु के लगते ही प्राणो को हर लेता है उसी प्रकार शरीर की विभूषा आदि दुर्गुण भी साधु के गुणो को नष्ट कर देते है।।57।।

अंग पच्चंग संठाणं, चारुल्लविय पेहियं।
इत्थीणं तं निज्झाए, कामराग विवड्ढणं।।58।।

अन्वयार्थ– (इत्थीण) स्त्रियो के (अगपच्चग सठाण) अग-उपाग की रचना (चारुल्लविय पेहिय) मनोहर बोलना ओर कटाक्ष–विक्षेपादि युक्त मनोहर देखना (त) इन सबकी तरफ ब्रह्मचारी पुरुप को (न निज्झाए) रागपूर्वक न देखना चाहिए क्योकि ये सब (कामरागविवड्ढण) कामविकार को बढाने वाले है अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करने वाले है।।58।।

विसएसु मणुन्नेसु, पेमं नाभिनिवेसए।
अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पुग्गलाण उ।।59।।

अन्वयार्थ– (तेसि) उन शब्दादि विषय सम्बन्धी (पुग्गलाण) पुद्‌गलो के (परिणाम) परिणाम को (अणिच्च) अनित्य (विन्नाय) जानकर बुद्धिमान साधु (मणुन्नेसु) मनोज्ञ (विसएसु) शब्दादि विपया मे (पेम) रागभाव (नाभिनिवेसए) न करे (उ) ओर इसी तरह अमनोज्ञ

विषयो मे द्वेष भी न करे क्योकि क्षणभर मे मनोज्ञ पदार्थ अमनोज्ञ ओर अमनोज्ञ पदार्थ मनोज्ञ हो जाते है, ऐसी अवस्था मे रागभाव और द्वेषभाव करना व्यर्थ है।।59।।

पोग्गलाण परीणाम, तेसि नच्चा जहा तहा।
विणीयतण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा।।60।।

अन्वयार्थ– (तेसि) उन शब्दादि विषय सम्बन्धी (पोग्गलाण) पुद्गलो के (परीणाम-परिणाम) परिणाम को (जहा तहा) यथावत्– जैसा है वैसा (नच्चा) जानकर अर्थात् जो वस्तु आज सुन्दर दिखाई देती है वही कल असुन्दर और असुन्दर वस्तु सुन्दर दिखाई देने लगती है, इस प्रकार पुद्गलो के परिणाम को जानकर साधु (विणीयतण्हो-तिण्हो) लालसा रहित होकर (सीईभूएण अप्पणा) अपनी आत्मा को शान्त बनाकर (विहरे) विचरे अर्थात् सयममार्ग का आराधन करे।।60।।

जाइ सद्धाइ निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरियसमए।।61।।

अन्वयार्थ– (जाइ-जाए) जिस (सद्धाइ-सद्धाए) श्रद्धा से एव वैराग्यभाव से (उत्तम) उत्तम (परियायट्ठाण) चारित्र को- प्रव्रज्या को (निक्खतो) स्वीकार किया है (तमेव) उसी श्रद्धा तथा पूर्ण वैराग्य से (आयरियसमए) महापुरुषो द्वारा बताये गये (गुणे) उत्तम गुणो मे अनुरक्त रहकर (अणुपालिज्जा) साधु को सयम धर्म का यथावत् पालन करना चाहिए।।61।।

तव चिम संजम जोगय च, सज्झाय जोगं च सया अहिट्ठए।
सूरे व सेणाइ समत्त माउहे, अलमप्पणो होइ अल परेसिं।।62।।

अन्वयार्थ– (व) जिस प्रकार (सेणाइ) चतुरगिणी सेना से घिरा हुआ तथा (समत्तमाउहे) शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित (सूरे) शूरवीर पुरुष अपनी रक्षा करता हुआ दूसरो की भी रक्षा करता है उसी

प्रकार (इम च) इन बारह प्रकार के (तव) अशनादि तप (च) और (सजम जोगय) छ जीव निकाय की रक्षा रूप सयम (च) तथा (सज्झाय जोग) स्वाध्याय योग का (सया) सदा (अहिट्ठिए) आराधन करने वाला मुनि (अप्पणो) अपनी आत्मा की रक्षा करने मे एव कल्याण करने मे (अल) समर्थ (होइ) होता है ओर (परेसि) दूसरा की भी रक्षा एव कल्याण करने मे (अल) समर्थ होता है अथवा अपनी आत्मा की रक्षा करता हुआ कर्मरूपी शत्रुओ का नाश करने मे समर्थ होता है।।62।।

सज्झाय सज्झाण रयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे रयस्स।
विसुज्झई जं सि मलं पुरेकडं, समीरियं रुप्पमलं व जोइणा।।63।।

अन्वयार्थ– (व) जिस प्रकार (जोइणा) अग्नि द्वारा (समीरिय) तपाए हुए (रुप्पमल) सोने-चादी का मैल दूर हो जाता है उसी प्रकार (सज्झाए) वाचना आदि पाच प्रकार की स्वाध्याय और (सज्झाण-सुज्झाणरयस्स) धर्मध्यान, शुक्लध्यान मे तल्लीन (ताइणो) छ काय जीवो के रक्षक (अपावभावस्स) निष्पाप शुद्ध अन्त करण वाले और (तवे) तपस्या मे (रयस्स) रत (सि-से) साधु का (पुरेकड) पूर्वभव सचित (ज मल) पाप रूपी मैल (विसुज्झई) नष्ट हो जाता है।।63।।

से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्ते अममे अकिंचणे।
विरायई कम्म घणम्मि अवगए, कसिणब्भ पुडावगमे व चंदिमे।।64।।
त्ति बेमि।

अन्वयार्थ– (व) जिस प्रकार (कसिणब्भपुडागमे) सम्पूर्ण बादलो के हट जाने पर (चदिमे) शरत्कालीन पूर्णमासी का चन्द्रमा (विरायई) शोभित होता है उसी प्रकार (तारिसे) पूर्वोक्त गुणो का धारक (दुक्खसहे) अनुकूल-प्रतिकूल सभी परीषहो को समभावपूर्वक सहन करने वाला (जिइदिए) जितेन्द्रिय (सुएण जुत्ते) श्रुतज्ञान से युक्त

(अममे) ममत्व भाव से रहित (अकिंचणे) द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित (से) वह साधु (कम्मघणम्मि) ज्ञानावरणीयादि कर्मरूपी बादलो के (अवगए) दूर हो जाने पर (विरायई) निर्मल केवलज्ञान के प्रकाश से शोभित होता है।।64।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।



'विनय समाधि' नामक नौवें अध्ययन का पहला उद्देशा

थभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फलं व कीयस्स वहाय होइ।।1।।

अन्वयार्थ– जो साधु (थभा) अहकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणय) विनय धर्म की (न सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नहीं करता है तो (सो चेव) के अहकारादि दुर्गुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणो को उसी प्रकार नष्ट कर देते है (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बास का (फलं) फल (वहाय होइ) स्वय बास को नष्ट कर देता है अर्थात् जैसे बास के फल आने पर बास का नाश हो जाता है उसी प्रकार साधु की आत्मा मे अविनय को उत्पन्न करने वाले अहकारादि दुर्गुण पैदा होने पर चारित्र का नाश हो जाता है।।1।।

जे यावि मंदित्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्प सुएत्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायण ते गुरुणं।।2।।

अन्वयार्थ– (जे) जो साधु (गुरु) गुरु को (मदित्ति) यह मन्द बुद्धि है (विइत्ता) एसा समझकर (यावि) अथवा (इमे) यह (डहरे) बालक है (अप्पसुएत्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (नच्चा) मानकर (हीलंति) हीलना- निन्दा करते है (ते) वे (गुरूण) गुरुजनो की (आसायण)

आशातना (करति) करते है जिससे उन्हे (मिच्छ) मिथ्यात्व की (पडिवज्जमाणा) प्राप्ति होती है।।2।।

पगईइ मदावि भवति एगे, डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया।
आयारमता गुणसुट्ठिअप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा।।3।।

अन्वयार्थ– (एगे) बहुत–से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइ-पगईए) स्वभाव से (मदावि) मदबुद्धि (भवति) होते है (य) तथा (जे) बहुत–से (डहरावि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुयबुद्धोववेया) शास्त्रो के ज्ञाता एव बुद्धिमान् होते है- ज्ञान मे न्यूनाधिक होने पर भी (आयारमता) सदाचारी और (गुणसुट्ठिअप्पा) मूलगुण–उत्तरगुणो का सम्यक् पालन करने वाले गुरुजनो का अपमान न करना चाहिए क्योकि (सिहिरिव) जिस प्रकार अग्नि ईधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनो की हीलना उसके ज्ञानादि गुणो को (भास कुज्जा) नष्ट कर देती है अर्थात् गुरुजनो की आशातना करने से ज्ञानादि गुणो का नाश हो जाता है।।3।।

जे यावि नागं डहरति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ।
एवायरियंपि हु हीलयतो, नियच्छई जाइपहं खु मदो।।4।।

अन्वयार्थ– (जे यावि) जो कोई मूर्ख मनुष्य (डहरति) यह छोटा है– इस प्रकार (नच्चा) जानकर (नाग) साप को (आसायए) छेडता है- लकडी आदि से उसे सताता है (हु) तो (से) वह (अहियाय) उस सताने वाले के लिए अहितकारी (होइ) होता है अर्थात् उसे काट खाता है (एव) उसी प्रकार (आयरियपि) आचार्य महाराज की (हीलयतो) हीलना करने वाला (मदो-मदे) मन्दबुद्धि शिष्य (खु) निश्चय ही (जाइपह) एकेन्द्रियादि जातियो मे (नियच्छई) चला जाता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फस कर अनन्त ससारी बन जाता है।।4।।

आसीविसो वावि परं सुरुट्ठो, किं जीवनासाउ परं नु कुज्जा।
आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मुक्खो।।5।।

अन्वयार्थ– (आसीविसो) दृष्टिविष साप (पर) अत्यन्त (सुरुट्ठो वावि) कुपित हो जाने पर भी (जीवनासाउ) प्राणनाश से (पर) अधिक (कि नु कुज्जा) और क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ नही कर सकता किन्तु जो शिष्य (आयरिय पाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज को (अप्पसन्ना) अप्रसन्न करता है वह शिष्य (आसायण) गुरु की आशातना करने से (अबोहि) मिथ्यात्व को प्राप्त होता है जिससे (पुण) फिर (नत्थिमुक्खो) उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।।5।।

भावार्थ– साप का काटा हुआ प्राणी एक ही दफा मरता है किन्तु आचार्य महाराज की आशातना करने वाले को वारम्बार जन्म-मरण करना पडता है।

जो पावगं जलिअमवक्कमिज्जा, आसीविसं वावि हु कोवइज्जा।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी, एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं।।6।।

अन्वयार्थ– जो अभिमानी शिष्य (गुरूण) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (जलिअं) जलती हुई (पावगं) अग्नि को (अवक्कमिज्जा) पैरो से कुचलकर बुझाना चाहता है (वावि) अथवा जो (आसीविस) दृष्टिविष सर्प को (हु कोवइज्जा) कुपित करता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (जीवियट्ठी) जीने की इच्छा से (विस) हलाहल विष को (खायइ) खाता है।।6।।

सिया हु से पावय नो डहिज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
सिया विसं हलाहलं न मारे, न यावि मुक्खो गुरु हीलणाए।।7।।

अन्वयार्थ– (सिया हु) यदि कदाचित् (से) अग्नि के ऊपर पैर रखने वाले पुरुष के पैर को (पावय) अग्नि (नो डहिज्जा) न जलावे (वा) अथवा (कुविओ) कुपित हुआ (आसीविसो) दृष्टि-विष सर्प भी

(न भक्खे) न काटे (सिया) कदाचित् (हलाहल) हलाहल नामक (विस) तीव्र विष भी (न मारे) अपना असर न दिखावे अर्थात् खाने वाले को न मारे। यद्यपि ये सब बाते असम्भव है तथापि विद्याबल एव मत्रबल से यदि कदाचित् सम्भव हो भी जाय किन्तु (गुरु हीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले को (न याविमुक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नही हो सकता।।7।।

जो पव्वयं सिरसा भित्तुमिच्छे, सुत्त व सीह पडिबोहज्जा।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहार, एसोवमाऽऽसायणया गुरूण।।8।।

अन्वयार्थ– जो दुर्बुद्धि शिष्य (गुरूण) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (पव्वय) पर्वत को (सिरसा) मस्तक की टक्कर से (भित्तु) फोडना (इच्छे) चाहता है (व) अथवा (सुत्त) सोते हुए (सीह) सिह को (पडिबोहइज्जा) लात मारकर जगाता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (सत्ति अग्गे) तीक्ष्ण तलवार की धार पर (पहार दए) मुष्टि का प्रहार करता है।।8।।

भावार्थ– उपरोक्त कार्य करने वाला पुरुष अपना ही अहित करता है, इसी तरह गुरु की आशातना करने वाला अविनीत शिष्य भी अपना ही अहित करता है।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिंदिज्ज व सत्ति अग्गं, न यावि मुक्खो गुरु हीलणाए।।9।।

अन्वयार्थ– (सिया हु) यदि कदाचित् कोई वासुदेवादि शक्तिशाली पुरुष (सीसेण) मस्तक की टक्कर से (गिरिं पि) पर्वत को भी (भिदे) चूर-चूर कर दे (हु) अथवा (सिया) कदाचित् (कुविओ) लात मार कर जगाने से कुपित हुआ (सीही) सिह भी (न भक्खे) न खावे (व) अथवा (सिया) कदाचित् (सत्ति अग्ग) तलवार की तीक्ष्ण धार पर मुष्टि प्रहार करने पर भी (न भिदिज्ज) हाथ न कटे अर्थात्

ये असम्भव बाते सम्भव हो भी जाय किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले दुर्बुद्धि शिष्य को (न याविमुक्खा) कभी भी मोक्ष प्राप्त नही हो सकता।।9।।

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मुक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा।।10।।

अन्वयार्थ-- (आयरियपाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज की (आसायण) आशातना करके (पुण अप्पसन्ना) उन्हे अप्रसन्न करने वाले पुरुष को (अबोहि) मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है जिससे (नत्थि मुक्खो) वह मोक्ष सुख का अधिकारी नहीं हो सकता (तम्हा) इसलिए (अणाबाहसुहाभिकखी) मोक्ष के अनाबाध सुख की चाह रखने वाला पुरुष (गुरुप्पसायाभिमुहो) गुरु महाराज को प्रसन्न करने मे (रमिज्जा) सदा प्रयत्नशील रहे।।10।।

जहाहिअग्गी जलणं नमंसे, नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं।
एवायरियं उवचिट्ठइज्जा, अणंतनाणोवगओऽवि संतो।।11।।

अन्वयार्थ-- (जहा) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (नाणाहुईमंतपयाभिसित्त) नाना प्रकार की घृतादि की आहुतियो से तथा वेदमन्त्रो से सस्कार की हुई (जलण) यज्ञ की अग्नि को (नमसे) नमस्कार करता है (एव) उसी प्रकार (अणतनाणोवगओऽवि) अनन्त ज्ञानसंपन्न (सतो) हो जाने पर भी शिष्य को (आयरिय) आचार्य महाराज की (उवचिट्ठइज्जा) विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिए।।11।।

जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं पउंजे।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ, कायग्गिरा भो मणसा य निच्चं।।12।।

अन्वयार्थ-- (भो) गुरु महाराज शिष्य को कहते है कि शिष्य का यह कर्तव्य है कि (जस्संतिए) जिन गुरु महाराज के पास (धम्मपयाइ) धर्मशास्त्रो की (सिक्खे) शिक्षा प्राप्त करे (तस्संतिए)

उनकी सदा (वेणइय) विनयभक्ति (पउजे) करे (पजलीओ) दोनो हाथ जोडकर (सिरसा) और मस्तक झुकाकर नमस्कार करे (य) और (कायग्गिरा मणसा) मन, वचन, काया से (निच्च) सदा (सक्कारए) सत्कार करे अर्थात् गुरु के आने पर खडे होना, उन्हे वन्दना करना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आदि कार्यो से उनका विनय करे।।12।।

लज्जा दया सजम बंभचेरं, कल्लाण भागिस्स विसोहि ठाणं।
जे मे गुरू सययमणुसासयति, तेऽह गुरू सयय पूययामि।।13।।

अन्वयार्थ– (लज्जा) अधर्म के प्रति लज्जा-भय, (दया) दया अनुकम्पा (सजम) सयम और (बभचेर) ब्रह्मचर्य– ये चारो (कल्लाणभागिस्स) अपनी आत्मा का हित चाहने वाले मुनि के लिए (विसोहिठाण) विशुद्धि के स्थान है। इसलिए शिष्य को यह भावना रखनी चाहिए कि (जे) जो (गुरू) गुरु महाराज (मे) मुझे (सयय) सदा (अणुसासयति) शिक्षा देते है (तेऽह-तेहि गुरु) उन गुरु महाराज की मुझे (सयय) सदा (पूययामि) विनय-भक्ति करनी चाहिए।।13।।

जहा निसते तवणच्चिमाली, पभासई केवल भारह तु।
एवायरियो सुयसीलबुद्धिए, विरायई सुरमज्झे व इंदो।।14।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (निसते) रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् प्रात काल (तवणच्चिमाली) तेज से देदीप्यमान सूर्य अपनी किरणो से (केवलभारह तु) सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को (पभासई) प्रकाशित करता है (एव) उसी प्रकार (आयरियो) आचार्य महाराज (सुयसीलबुद्धिए) अपने ज्ञान, चारित्र तथा तात्त्विक उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थो को प्रकाशित करते है और (व) जिस प्रकार (सुरमज्झे) देवो मे (इदो) इन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार आचार्य महाराज भी साधुओ के बीच मे (विरायई) शोभित होते हैं।।14।।

जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो, नक्खत्ततारागणपरिवुडप्पा।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के, एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे।।15।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (नक्खत्ततारागणपरिवुडप्पा) नक्षत्र और ताराओ के समूह से घिरा हुआ (कोमुइजोगजुत्तो) कार्तिक पूर्णमासी को उदय हुआ (ससी) चन्द्रमा (अब्भमुक्के) बादलो से रहित (विमले) अतीव निर्मल (खे) आकाश मे (सोहई) शोभित होता है (एव) इसी प्रकार (गणी) आचार्य महाराज (भिक्खुमज्झे) साधु समूह के मध्य मे (सोहइ) शोभित होते है।।15।।

महागरा आयरिया महेसी, समाहि जोगे सुयसील बुद्धिए।
संपाविउकामे अणुत्तराइं, आराहए तोसइ धम्मकामी।।16।।

अन्वयार्थ– (अणुत्तराइ) उत्कृष्ट ज्ञानादि भावरत्नो को (सपाविउकामे) प्राप्त करने की इच्छा वाला (धम्मकामी) श्रुतचारित्र रूप धर्म का अभिलाषी मुनि (महागरा) ज्ञानादि रत्नो के भण्डार (सुयसीलबुद्धिए) श्रुत चारित्र और बुद्धि से युक्त (समाहि जोगे) समाधिवत (महेसी) महर्षि (आयरिया) आचार्य महाराज की (आराहए) आराधना करे और (तोसइ) उनकी विनय-भक्ति करके उन्हे प्रसन्न रखे।।16।।

सुच्चाण मेहावी सुभासियाइं, सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे, से पावई सिद्धिमणुत्तरं।।17।।
त्ति बेमि।

अन्वयार्थ– (मेहावी) गुरु वचनो को यथार्थ रूप से धारण करने की बुद्धि वाला विनीत शिष्य (सुभासियाइ) तीर्थकर भगवान् द्वारा फरमाये हुए विनयाराधना के शिक्षाप्रद वचनो को (सुच्चाण) सुनकर (अप्पमत्तो) प्रमादरहित होकर (आयरिय) आचार्य महाराज की (सुस्सूसए) सेवा-शुश्रूषा करे। इस प्रकार सेवा करने से (से) वह विनीत शिष्य (अणेगे) अनेक (गुणे) सद्गुणो को (आराहइत्ताण) प्राप्त करके (सिद्धिमणुत्तर) उत्तम सिद्धि गति को (पावइ) प्राप्त होता है।।17।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

'विनय समाधि' नामक नौवें अध्ययन का दूसरा उद्देशा

मूलाउ खधप्पभवो दुमस्स, खधाउ पच्छा समुविति साहा।
साहप्पसाहा विरुहति पत्ता, तओ सि पुप्फ च फल रसो य।।1।।

अन्वयार्थ– (दुमस्स) वृक्ष के (मूलाउ) मूल से (खघप्पभवो) स्कन्ध-धड उत्पन्न होता है (पच्छा) इसके बाद (खधाउ) स्कन्ध से (साहा) शाखाए (समुविति) उत्पन्न होती है (साहप्पसाहा) शाखाओ से प्रशाखाए- छोटी-छोटी डालिया, (विरुहति) उत्पन्न होती है और उनसे (पत्ता) पत्ते निकलते है (तओ) इसके बाद (सि-से) उस वृक्ष के क्रमश (पुप्फ) फूल (च) और (फल) फल (य) और (रसो) रस उत्पन्न होता है।।1।।

एव धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
जेण कित्तिं सुयं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ।।2।।

अन्वयार्थ– (एव) इसी प्रकार (धम्मस्स) धर्मरूपी वृक्ष का (मूल) मूल (विणओ) विनय है और (से) उसका (परमो) सर्वोत्कृष्ट फल (मुक्खो) मोक्ष है (जेण) उस विनयरूपी मूल द्वारा विनयवान् शिष्य इस लोक मे (कित्ति) कीर्ति और (सुय) द्वादशाङ्ग रूप श्रुतज्ञान को (अभिगच्छइ) प्राप्त होता है (च) और महापुरुषो द्वारा की गई (नीसेस) परम (सिग्घ) प्रशसा को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् क्रमश अन्त मे नि श्रेयसरूपी मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है।।2।।

जे य चडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे।
वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठं सोयगय जहा।।3।।

अन्वयार्थ– (जहा) जिस प्रकार (सोयगय) जल के प्रवाह मे पडा हुआ (कट्ठ) काष्ठ इधर-उधर गोते खाता है इसी प्रकार (जे)

जो मनुष्य (चडे) क्रोधी (थद्धे) अभिमानी (दुव्वाई) कठोर तथा अहितकारी वचन बोलने वाला (नियडी) कपटी (सढे) धूर्त (य) और (अविणीअप्पा) अविनीत होता है (से) वह (वुज्झइ) चतुर्गति रूप ससार के अनादि प्रवाह मे बहता रहता है।।3।।

विणयं पि जो उवाएणं, चोइओ कुप्पई नरो।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंतिं, दंडेण पडिसेहए।।4।।

अन्वयार्थ– (उवाएण) प्रिय वचनादि किसी उपाय से आचार्य महाराज द्वारा (विणयपि-विणयम्मि) विनय धर्म की शिक्षा के लिए (चोइओ) प्रेरित किया जाने पर (जो) जो (नरो) अविनीत शिष्य (कुप्पई) क्रोध करता है (सो) मानो वह (इज्जति-एज्जति) अपने घर मे आती हुई (दिव्वं) दिव्य- अलौकिक (सिरिं) लक्ष्मी को (दडेण) डडे से मार कर (पडिसेहए) वापिस घर से बाहर निकालता है।।4।।

तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसंति दुह मेहंता, आभिओग मुवड्डिया।।5।।

अन्वयार्थ– (तहेव) दृष्टान्त द्वारा अविनय के दोष बताये जाते है यथा (उववज्झा) राजा-महाराजाओ के सवारी करने योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (अविणीअप्पा) अविनीतता के कारण अर्थात् स्वामी की आज्ञा का पालन न करने के कारण (अभिओगमुवड्डिया) भार ढोते हुए (दुहमेहता) और अनेक प्रकार का दु ख पाते हुए (दीसंति) देखे जाते है।।5।।

तहेव सुविणी अप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसंति सुह मेहंता, इड्ढिं पत्ता महासया।।6।।

अन्वयार्थ– (तहेव) दृष्टान्त द्वारा विनय के गुण बताये जाते है यथा– (सुविणीअप्पा) स्वामी की आज्ञा का पालन करना आदि की अच्छी शिक्षा पाये हुए (उववज्झा) राजा-महाराजाओ के सवारी योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (इड्ढिपत्ता) नाना प्रकार के आभूषणो

से सुसज्जित (महायसा) प्रशसा प्राप्त महायशस्वी (सुहमेहता) अनेक प्रकार का सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते है।।6।।

तहेव अविणीअप्पा, लोगम्मि नरनारिओ।
दीसंति दुह मेहंता, छाया ते विगलिंदिया।।7।।

अन्वयार्थ– (तहेव) जिस प्रकार तिर्यचो के विषय मे विनय और अविनय के गुण, दोष बताये गये है उसी प्रकार अब मनुष्यो के विषय मे बताये जाते है यथा (लोगम्मि-लोगसि) इस लोक मे जो (नरनारिओ) पुरुष और स्त्रिया (अविणीअप्पा) अविनीत होते है (ते) वे (छाया) कोडे आदि की मार से व्याकुल तथा (विगलिदिया) नाक, कान आदि इन्द्रियो के काट दिये जाने से विरूप होकर (दुहमेहता) नाना प्रकार के दु ख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं।।7।।

दंडसत्थपरिजुण्णा, असब्भवयणेहि य।
कलुणा विवन्नच्छंदा, खुप्पिवास परिग्गया।।8।।

अन्वयार्थ– अविनीत स्त्री, पुरुष (दडसत्थपरिजुण्णा) दडे और शस्त्रो की मार से व्याकुल (असब्भवयणेहि) कठोर वचनो से तिरस्कृत (कलुणा) दया के पात्र (य) और (विवन्नच्छदा) पराधीन अतएव (खुप्पिवास-सा-इपरिग्गया) भूख-प्यास से व्याकुल होकर दु ख पाते देखे जाते है।।8।।

तहेव सुविणीअप्पा, लोगसि नरनारिओ।
दीसति सुह मेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा।।9।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (लोगसि) लोक मे (नरनारिओ) जो स्त्री, पुरुष (सुविणीअप्पा) विनीत होते है वे सब (इड्ढि) ऋद्धि को (पत्ता) प्राप्त (महायसा) महायशस्वी (सुहमेहता) नाना प्रकार के सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं।।9।।

तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया।।10।।

अन्वयार्थ– (तहेव) जिस प्रकार तिर्यच और मनुष्यो के विषय मे विनय और अविनय के गुण–दोष बताये गये है उसी प्रकार अब देवो के विषय मे बताया जाता है यथा (अविणीअप्पा) जो जीव अविनीत होते है वे आयुष्य पूर्ण करके (देवा) वैमानिक अथवा ज्योतिषी देव (जक्खा) यक्षादि व्यन्तर देव (य) तथा भवनपति आदि गुह्यक देव होने पर भीं ऊची पदवी न पाकर (आभिओगमुवट्ठिया) बडे देवो के सेवक बनकर उनकी सेवा करते हुए तथा (दुहमेहता) नाना प्रकार के दु ख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते है।।10।।

तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा।।11।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (सुविणीअप्पा) जो जीव सुविनीत होते है वे (देवा) देव (जक्खा) यक्ष (य) और (गुज्झगा) भवनपति जाति के गुह्यक देव होकर उनमे भी (इड्ढि पत्ता) समृद्धशाली तथा (महायसा) महायशस्वी होते है और (सुहमेहता) अलौकिक सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते है।।11।।

जे आयरियउवज्झायाणं, सुस्सूसा वयणंकरा।
तेसि सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा।।12।।

अन्वयार्थ– (जो) जो शिष्य (आयारिय उवज्झायाण) आचार्य और उपाध्यायो की (सुस्सूसावयणकरा) सेवा-शुश्रूषा करते हैं और उनके वचनो को मानते हैं (तेसि) उनकी (सिक्खा) शिक्षा (जलसित्ता) जल से सीचे हुए (पायवा इव) वृक्षो की तरह (पवड्ढति) दिन पर दिन बढती है।।12।।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पाणेउणिआणि य।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इह लोगस्स कारणा।।13।।

अन्वयार्थ– (गिहिणो) गृहस्थ लोग (इह लोगस्स कारणा) इहलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए (अप्पणट्ठा) अपने लिए (वा) अथवा (परट्ठा) पुत्र-पौत्रादि के (उवभोगट्ठा) उपयोग मे आने के लिए

(सिप्पा) शिल्पकला (य) और (णेउणिआणि) व्यवहारकुशलता आदि सीखते है।।13।।

जेणं बध वहं घोर, परियावं च दारुण।
सिक्खमाणा नियच्छंति, जुत्ता ते ललिइदिया।।14।।

अन्वयार्थ– (जेण) लौकिक कला को सीखने मे (जुत्ता) लगे हुए (ललिइदिया) सुकोमल शरीर वाले (ते) श्रीमतो के पुत्र तथा राजकुमार आदि भी (सिक्खमाणा) शिक्षा पाते समय (घोर) दुस्सह (वह) वध (बध) बन्धन (च) और (दारुण) कठोर (परियाव) परितापना आदि कष्टो को (नियच्छति) सहन करते है।।14।।

तेऽवि तं गुरु पूयति, तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारति, नमसंति, तुट्ठा निद्देसवत्तिणो।।15।।

अन्वयार्थ– (तेऽवि) वे सुकोमल शरीर वाले राजकुमार आदि इतना कष्ट पाने पर भी (तस्स) उस (सिप्पस्स) शिल्पकला को (कारणा) सीखने के लिए (तुट्ठा) प्रसन्नतापूर्वक (त गुरु) उस शिल्पशिक्षक गुरु की (निद्देसवत्तिणो) आज्ञा का पालन करते है (पूयति) वस्त्र, आभूषणो द्वारा सेवा करते हैं (सक्कारति) सत्कार-सम्मान करते है और (नमसति) नमस्कार करते हैं।।15।।

किं पुण जे सुयग्गाही, अणंत हियकामए।
आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा त नाइवत्तए।।19।।

अन्वयार्थ– जब लौकिक विद्या को सीखने के लिए भी राजकुमार आदि इस प्रकार गुरु की विनयभक्ति करते है तो फिर (जे) जो (भिक्खू) मुनि (सुयग्गाही) आगमो के गूढ तत्त्वो के जिज्ञासु है तथा (अणत हियकामए) मोक्ष–सुख को प्राप्त करने की इच्छा वाले है (कि पुण) उनका तो कहना ही क्या ! अर्थात् उन्हे तो धर्माचार्य का विनय विशेष रूप से करना ही चाहिए। (तम्हा) इसलिए (आयरिया) आचार्य महाराज (ज) जो आज्ञा (वए) फरमावे (त) उस आज्ञा का (नाइवत्तए) उल्लघन नहीं करना चाहिए।।16।।

नीयं सिज्जं गइं ठाणं, नीयं च आसणाणि य।
नीय च पाए वंदिज्जा, नीय कुज्जा य अंजलिं।।17।।

अन्वयार्थ– विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (सिज्ज) अपनी शय्या (ठाण) अपने खडे होने या रुकने का स्थान (च) और (आसणाणि) आसन (नीय) गुरु की अपेक्षा नीचा रक्खे। (गइ) चलते समय भी (नीय) गुरु के आगे-आगे न चले और (नीय) नीचे झुककर (पाए) गुरु के चरणो मे (वदिज्जा) वन्दना करे (य) और (नीय) नीचे झुककर (अजलि कुज्जा) हाथ जोडकर नमस्कार करे।।17।।

संघट्टइत्ता काएण, तहा उवहिणामवि।
खमेह अवराहं मे, वइज्ज न पुणुत्ति य।।18।।

अन्वयार्थ– यदि कभी असावधानी से (काएण) गुरु महाराज के शरीर के साथ (तहा) तथा (उवहिणामवि) उनके धर्मोपकरणो के साथ (सघट्टइत्ता) सघट्टा- स्पर्श हो जाय (वइज्ज) तो शिष्य को उसी समय कहना चाहिए कि हे भगवन् ! (मे) मेरा (अवराह) यह अपराध (खमेह) क्षमा करो (य) और (न पुणुत्ति) आज पीछे ऐसा कभी नहीं करूगा।।18।।

दुग्गओ वा पओएणं, चोइओ वहई रहं।
एवं दुबुद्धि किच्चाणं, उत्तो वुत्तो पकुव्वई।।19।।

अन्वयार्थ– (वा) जिस प्रकार (दुग्गओ) दुर्बल-गलियार बैल (पओएण) चाबुक आदि की (चोइओ) मार पडने पर ही (रह) गाडी को (वहई) खीचता है (एव) उसी प्रकार (दुबुद्धि) दुष्ट बुद्धि अविनीत शिष्य भी (वुत्तो-वुत्तो) गुरु के बारम्बार कहने पर ही (किच्चाण) उनके कार्य को (पकुव्वई) करता है।।19।।

आलवंते लवंते वा, न निसिज्जाइ पडिस्सुणे।
मुत्तूणं आसणं धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे।।20।।

अन्वयार्थ– (आलवते) गुरु महाराज शिष्य को एक बार बुलावे (वा) अथवा (लवते) बारबार बुलाए तो (धीरो) विनयवान्

शिष्य को चाहिए कि वह (निसिज्जाइ) अपने आसन पर बैठे-बैठे ही (न पडिस्सुणे) गुरु महाराज की आज्ञा को सुनकर उत्तर न दे किन्तु (आसण) झटपट आसन को (मुत्तूण) छोडकर खडा हो जाय एव सावधान होकर गुरु महाराज की आज्ञा को सुने और (सुस्सूसाए) विनयपूर्वक (पडिस्सुणे) उसका उत्तर दे।।20।।

कालं छदोवयार च, पडिलेहित्ताण हेउहि।
तेण तेण उवाएण, त त संपडिवायए।।21।।

अन्वयार्थ– विनीत शिष्य को चाहिये कि वह (काल) द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव को (च) और (छदोवयार) गुरु महाराज के अभिप्राय को (हेउहि) अपनी तर्कणा शक्ति से (पडिलेहित्ताण) जानकर (तेण तेण–तेहि तेहि) उन-उन (उवाएण-उवाएहि) उपायो से (त त) उन-उन कार्यो को (सपडिवायए) सम्पादित करे।।21।।

विवत्ती अविणीयस्स, सपत्ती विणियस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ।।22।।

अन्वयार्थ– (अविणीयस्स) अविनीत पुरुष के (विवत्ती) सभी सद्गुण नष्ट हो जाते है (य) और (विणियस्स) विनीत पुरुष को (सपत्ती) सद्गुणो की प्राप्ति होती है। (एय) ये (दुहओ) दोनो बाते (जस्स) जिसने (नाय) अच्छी तरह जान ली है (से) वही (सिक्ख) शिक्षा (अभिगच्छइ) प्राप्त कर सकता है।।22।।

जे यावि चडे मइइड्ढि गारवे, पिसुणे नरे साहस हीणपेसणे।
अदिट्ठ धम्मे विणए अकोविए, असंविभागी न हु तस्स मुक्खो।।23।।

अन्वयार्थ– (जे यावि) जो (नरे) पुरुष (चडे) क्रोधी (मइइड्ढिगारवे) बुद्धि और ऋद्धि का अभिमान करने वाला (पिसुणे) चुगलखोर (साहस) साहसी- बिना सोचे-विचारे कार्य करने वाला (हीणपेसणे) गुरु की आज्ञा न मानने वाला (अदिट्ठधम्मे) धर्माचरण से रहित (विणए अकोविए) अविनीत और (असविभागी) असविभागी

होता है (तस्स) उसे (मुक्खो) मोक्ष (न हु) प्राप्त नहीं हो सकता।।23।।

निद्देसवित्ती पुण जे गुरूण, सुअत्थधम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओघमिणं दुरुत्तर, खवित्तु कम्म गइमुत्तम गय।।24।।
त्ति वेमि।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (गुरूण) गुरु महाराज की (निद्देसवित्ती) आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले है (जे सुअत्थधम्मा) तथा जो श्रुतधर्म के गूढ तत्त्वो के रहस्यो को जानने वाले है (पुण) ओर (विणयम्मि कोविया) विनय पालन मे चतुर होते है (ते) वे (इण) इस (दुरुत्तर) दुस्तर (ओघ) ससार रूपी समुद्र को (तरित्तु) तिरकर और (कम्म) कर्मो का (खवित्तु) क्षय करके (उत्तम) सर्वोत्तम (गइ) सिद्धगति को (गय) प्राप्त करते है तथा उपरोक्त गुणो को धारण करने वाले पुरुषो ने गत काल मे सिद्धगति प्राप्त की है और आगामी काल मे भी प्राप्त करेगे।।24।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

'विनय समाधि' नामक नौवें अध्ययन का तीसरा उद्देशा

आयरियं अग्गिमिवाहिअग्गी, सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा।
आलोइयं इंगियमेव नच्चा, जो छंदमाराहयई स पुज्जो।।1।।

अन्वयार्थ– (इव) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (अग्गि) अग्नि की साधना करने मे सावधान रहता है, उसी प्रकार (जो) जो शिष्य (आयरिय) आचार्य महाराज की (सुस्सूसमाणो) सेवा-शुश्रूषा करने मे (पडिजागरिज्जा) सदा सावधान रहता हे तथा (आलोइय) उनकी दृष्टि और (इगियमेव) इगिताकार-चेष्टा को (नच्चा) जानकर (छद) आचार्य महाराज के अभिप्रायो के अनुकूल (आराहयई) कार्य करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।1।।

आयारमट्ठा विणय पउजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्क।
जहोवइट्ठ अभिकखमाणो, गुरु तु नासाययई स पुज्जो।।2।।

अन्वयार्थ– जो शिष्य (आयारमट्ठा) आचारप्राप्ति के लिए (विणय) गुरु महाराज की विनय-भक्ति (पउजे) करता है और (सुस्सूसमाणो) उनकी सेवा करता हुआ (वक्क) उनकी आज्ञा को (परिगिज्झ) स्वीकार करता है एव (जहोवइट्ठ) उनकी इच्छा के अनुसार (अभिकखमाणो) कार्य करता है (तु-च) और जो (गुरु) गुरु महाराज की (नासाययई) कभी भी आशातना नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।2।।

रायणिएसु विणय पउजे, डहराऽवि य जे परियाय जिट्ठा।
नीयत्तणे वट्टइ सच्चवाई, उवायवं, वक्ककरे स पुज्जो।।3।।

अन्वयार्थ– (जे) जो साधु (रायणिएसु) रत्नाधिको की सम्यग् ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप रत्नत्रय से बडे मुनियो की (विणय) विनय-भक्ति (पउजे) करता है (य) इसी प्रकार (डहराऽवि) जो मुनि अवस्था मे छोटे है किन्तु (परियायजिट्ठा) दीक्षा मे बडे है उनकी भी विनय-भक्ति करता है (नीयत्तणे) गुरुजनो के सामने नम्रभाव से (वट्टइ) रहता है (सच्चवाई) हित–मित सत्य बोलता है (उवायव) सदा गुरु की सेवा मे रहता हुआ (वक्ककरो) उनकी आज्ञा का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।3।।

अन्नाय उछ चरई विसुद्ध, जवणट्ठया समुयाणं च निच्चं।
अलद्धुय नो परिदेवइज्जा, लद्धु न विकत्थई स पुज्जो।।4।।

अन्वयार्थ– जो साधु (निच्च) सदा (जवणट्ठया) सयमयात्रा के निर्वाह के लिए (समुयाण) समुदानिक गोचरी करके (अन्नायउछ) अज्ञात कुल से थोडा-थोडा (विसुद्ध) निर्दोष आहार (चरई) लेता है (च) और (अलद्धुय) यदि किसी समय आहार न मिले तो (नो परिदेवइज्जा) खेद नही करता तथा (लद्धु) इच्छानुसार

मिलने पर (न विकत्थई) प्रशसा नहीं करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।4।।

संथारसिज्जासणभत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभेऽवि संते।
जो एवमप्पाणभितोसइज्जा, संतोषपाहन्नरए स पुज्जो।।5।।

अन्वयार्थ– (जो) जो साधु (सथारसिज्जासणभत्तपाणे) संस्तारकं, शय्या, आसन और आहार-पानी के (अइलाभेऽविसते) अधिक मिलते रहने पर भी (अप्पिच्छया) अल्प इच्छा रखता है एव उनमे मूर्च्छाभाव नही रखता हुआ (सतोसपाहन्नरए) सतोष भाव रखता है (एव) इस प्रकार जो साधु (अप्पाण) अपनी आत्मा को (अभितोसइज्जा) सभी प्रकार से संतुष्ट रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।5।।

सक्का सहेउं आसाइ कंटया, अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहिज्ज कंटए, वईमए कन्नसरे स पुज्जो।।6।।

अन्वयार्थ– (उच्छहया) धनादि की प्राप्ति की (आसाइ) आशा से (नरेणं) मनुष्य (अओमया) लोह के (कटया) तीक्ष्ण बाणो को (सहेउ) सहन करने मे (सक्का) समर्थ हो जाता है (उ) किन्तु (कन्नसरे) कानो मे बाणो की तरह लगने वाले (वईमए) कठोर वचन रूपी (कटए) बाणो को सहन करना बहुत कठिन है फिर भी जो उन्हें (अणासए) किसी भी आशा के बिना (सहिज्ज) समभावपूर्वक सहन कर लेता है (स) वह (पुज्जो) वास्तव मे पूज्य है।।6।।

मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कटया, अओमया तेऽवि तओ सुउद्धरा।
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि।।7।।

अन्वयार्थ– (अओमया) लोह के (कटया) काटे-बाण (उ) तो (मुहुत्तदुक्खा) थोडे काल तक ही दु खदायी (हवति) होते हैं और (तेऽवि) वे (तओ) जिस अङ्ग मे लगे हैं उस अङ्ग मे से (सुउद्धरा) योग्य वैद्य द्वारा आसानी से निकाले भी जा सकते हैं किन्तु (वाया

दुरुत्ताणि) कटु वचन रूपी बाणो का (दुरुद्धराणि) निकलना बहुत मुश्किल है अर्थात् हृदय मे चुभ जाने के बाद उनका निकलना दु साध्य है क्योकि कठोर वचनो का प्रहार हृदय को बींध कर आर-पार हो जाता है (वेराणुबधीणि) इस लोक और परलोक मे वे बैर-भाव की परम्परा को बढाने वाले है तथा (महब्भयाणि) नरकादि नीच गतियो मे ले जाने के कारण वे महाभय के उत्पन्न करने वाले है।।7।।

समावयंता वयणभिधाया, कन्न गया दुम्मणिय जणंति।
धम्मुत्ति किच्चा परमग्गसूरे, जिइंदिए जो सहई स पुज्जो।।8।।

अन्वयार्थ– (समावयता) समूह रूप से आते हुए (वयणाभिधाया) कठोर वचन रूपी प्रहार (कन्न गया) कान मे पडते ही (दुम्मणिय) दौर्मनस्य भाव (जणति) उत्पन्न कर देते है अर्थात् कटु वचनो को सुनते ही मन की भावना दुष्ट हो जाती है किन्तु (धम्मुत्ति) 'क्षमा करना साधु का धर्म है' ऐसा (किच्चा) मान कर (जो) जो साधु उन कठोर वचनरूपी बाणो को (सहई) समभावपूर्वक सहन कर लेता है वह (परमग्गसूरे) वीर शिरोमणि है (जिइदिए) जितेन्द्रिय है (स) ऐसा साधु (पुज्जो) जगत्पूज्य होता है।।8।।

अवण्णवायं च परम्मुहस्स, पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं।
ओहारिणिं अप्पियकारिणि च, भासं न भासिज्ज सया स पुज्जो।।9।।

अन्वयार्थ– जो साधु (परम्मुहस्स) किसी की पीठ पीछे (च) तथा (पच्चक्खओ) सामने (अवण्णवाय) निदा नहीं करता (च) और (पडिणीय) पर पीडाकारी (ओहारिणि-ओहारणि) निश्चयकारी (च) और (अप्पियकारिणि) अप्रियकारी (भास) भाषा (सया) कभी (न भासिज्ज) नही बोलता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।9।।

अलोलुए अक्कुहए अमाई, अपिसुणे यावि अदीणवित्ती।
नो भावए नोऽवि य भावि अप्पा, अकोउहल्ले य सया स पुज्जो।।10

अन्वयार्थ– जो साधु (अलोलुए) जिह्वालोलुपी नही हे एव किसी प्रकार का लोभ-लालच नही करता (अक्कुहए) मत्र-तत्रादि का प्रयोग भी नही करता (अमाई) जो निष्कपट है (अपिसुणे) जो किसी की चुगली नही करता (यावि) तथा (अदीणवित्ती) भिक्षा न मिलने पर भी जो दीनता नही दिखलाता (य) ओर (नो भावए) जो दूसरो को प्रेरणा करके उनसे अपनी स्तुति नही करवाता ओर (नोऽवि भावि अप्पा) न स्वय अपने मुह से अपनी प्रशसा करता हे (य) और जो (सया) कभी (अकोउहल्ले) नाटक, खेल, तमाशे आदि देखने की इच्छा नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।10।।

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिण्हाहि साहू गुण मुचऽसाहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएण, जो राग दोसेहि समो स पुज्जो।।11।।

अन्वयार्थ– गुरु महाराज फरमाते है कि (गुणेहि) विनयादि गुणो को धारण करने से (साहू) साधु होता है ओर (अगुणेहि) अविनयादि दुर्गुणो से (असाहू) असाधु होता है अर्थात् साधुपना और असाधुपना गुणो और अवगुणो पर अवलम्बित है। अत हे शिष्यो। (साहूगुण) साधु के योग्य गुणो को (गिण्हाहि) ग्रहण करो और (असाहू) असाधुगुणो को-अवगुणो को (मुच) छोड दो। इस प्रकार (जो) जो (अप्पएण) अपनी ही आत्मा द्वारा (अप्पग) अपनी आत्मा को (वियाणिया) समझा कर (राग दोसेहि) राग-द्वेष मे (समो) समभाव रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।11।।

तहेव डहरं च महल्लगं वा, इत्थिं पुमं पव्वइयं गिहिं वा।
नो हीलए नोऽवि य खिसइज्जा, थंभ च कोहं च चए स पुज्जो।।12।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार जो साधु (डहर) बालक (च) और (महल्लग) वृद्ध की (इत्थि-इत्थी) स्त्री (वा) या (पुम) पुरुष की, (पव्वइय) साधु (वा) या (गिहि) गृहस्थ की, किसी की भी (नो हीलए) एक बार हीलना-निन्दा नहीं करता (अवि य) तथा (नो खिसइज्जा) बार–बार हीलना–निन्दा नहीं करता (च) तथा जो (थभ) अहकार

(च) और (कोह) क्रोध को (चए) छोड देता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।12।।

जे माणिया सयय़ं माणयति, जत्तेण कन्न व निवेसयति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइदिए सच्चरए स पुज्जो।।13।।

अन्वयार्थ– (जे) जो शिष्य (सयय) सदा (माणिया) गुरु महाराज को विनय–भक्ति द्वारा सम्मानित करते है तो (माणयति) गुरु महाराज भी विद्यादान द्वारा उन्हे योग्य बना देते हे और (व) जिस प्रकार (कन्न) माता-पिता अपनी कन्या का योग्य पति के साथ विवाह कर उसे श्रेष्ठ कुल मे स्थापित कर देते है, उसी प्रकार गुरु महाराज भी (जत्तेण) प्रयत्नपूर्वक उन शिष्यो को (निवेसयति) उच्च श्रेणी पर पहुचा देते है (ते) ऐसे (माणरिहे) सम्माननीय उपकारी पुरुषो की (जिइदिए) जो जितेन्द्रिय (सच्चरए) सत्यपरायण (तवस्सी) तपस्वी शिष्य (माणए) विनय-भक्ति करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।13।।

तेसि गुरूणं गुणसायराण, सुच्चाण मेहावि सुभासियाइं।
चरे मुणी पचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो।।14।।

अन्वयार्थ– (तेसि) उन (गुणसायराण) गुणो के सागर (गुरूण) गुरु महाराज के (सुभासियाइ) सुभाषित उपदेश को (सुच्चाण) सुनकर (मेहावि) जो बुद्धिमान् (मुणी) साधु (पचरए तिगुत्तो) पाच महाव्रत और तीन गुप्तियो से युक्त होकर (चउक्कसायावगए) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो को छोड देता है और (चरे) गुरु महाराज की विनय-भक्ति करता हुआ शुद्ध सयम का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है।।14।।

गुरुमिह सयय पडियरिय मुणी, जिणमयनिउणे अभिगमकुसले।
धुणिय रयमलं पुरेकड, भासुरमउल गइ गय।।15।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (जिणमयनिउणे) निर्ग्रन्थ प्रवचनो का ज्ञाता (अभिगमकुसले) ज्ञानकुशल, विनीत एव साधुओ की विनय-

करने वाला (मुणी) मुनि (इह) इस लोक मे (गुरु) गुरु महाराज की (सयय) निरन्तर (पडियरिय) सेवा करके (पुरेकड) पूर्वकृत (रयमल) कर्मरज को (धुणिय) क्षय करके (भासुर) अनन्त ज्ञानज्योति से देदीप्यमान (अउल) सर्वोत्कृष्ट (गइ) सिद्ध गति को (गय) प्राप्त करता है।।15।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

'विनय समाधि' नामक नौवें अध्ययन का चौथा उद्देशा

सुय मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहि भगवंतेहि चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता। कयरे खलु ते थेरेहि भगवंतेहि चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता ? इमे खलु ते थेरेहि भगवंतेहि चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता। तंजहा- 1. विणय समाही 2. सुय समाही 3. तव समाही 4. आयार समाही।

अन्वयार्थ– श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि (आउस) हे आयुष्मान् जम्बू ! (तेण भगवया) उन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एव) इस प्रकार (अक्खाय) फरमाया था वह (मे) मैंने (सुय) सुना है। यथा (इह-खलु) जैन सिद्धान्त मे (थेरेहिं) स्थविर (भगवतेहि) भगवन्तो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (चत्तारि) चार प्रकार (पन्नत्ता) बतलाये है। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य ! (थेरेहि भगवतेहि) उन स्थविर भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (ते) वे (चत्तारि) चार प्रकार (कयरे) कौन से (पन्नत्ता) बतलाये हैं ? गुरु महाराज उत्तर देते है कि– हे आयुष्मान् शिष्य ! (थेरेहि) उन स्थविर (भगवतेहि) भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार प्रकार (पन्नत्ता) बतलाये हैं। (तजहा) जैसे कि –

(विणयसमाही) विनयसमाधि, (सुयसमाही) श्रुतसमाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आयारसमाही) आचारसमाधि।

विणए सुए य तवे, आयारे निच्च पडिया।
अभिरामयति अप्पाण, जे भवति जिइदिया।।1।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (जिइदिया) जितेन्द्रिय साधु (विणए) विनय मे (सुए) श्रुत मे (तवे) तप मे (य) और (आयारे) आचार मे (निच्च) सदा (अप्पाण) अपनी आत्मा को (अभिरामयति) लगाये रहते है (पडिया) वे ही सच्चे पण्डित (भवति) कहलाते है।।1।।

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ, तजहा .-1 अणुसासिज्जतो सुस्सूसइ 2 सम्म संपडिवज्जइ 3 वेयमाराहइ 4 न य भवइ अत्तसपग्गहिए चउत्थ पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ– (विणयसमाही खलु) विनयसमाधि (चउव्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तजहा) जैसे कि – 1 (अणुसासिज्जतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उस गुरु को परमोपकारी जानकर (सुस्सूसइ) सदा सेवा–शुश्रूषा करना एव उनकी आज्ञा को सुनने की इच्छा रखना। 2 (सम्म सपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा को सुनकर उसके अभिप्राय को अच्छी तरह समझना। 3 (वेयमाराहइ-वयमाराहयइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एव श्रुतज्ञान की आराधना करना। 4 (न य भवइ अत्तसपग्गहिए) अभिमान न करना एव आत्मप्रशसा न करना (चउत्थ) यह चौथा (पय) भेद (भवइ) है (य) और (इत्थ-एत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है –

'पेहेइ हियाणुसासण, सुस्सूसई तं च पुणो अहिट्ठए।
न य माण मएण मज्जई, विणय समाहि आययट्ठिए'।।2।।

अन्वयार्थ– (विणय समाहि) विनयसमाधिपूर्वक (आययट्ठिए)

अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासण) हितकारी शिक्षा सुनने की सदा (पेहेइ) इच्छा करे (च) ओर (त) गुरु की आज्ञा को (सुस्सूसई) शिरोधार्य करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठए-अहिट्ठिए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और विनयी होने का (न माणमएण मज्जई) अभिमान न करे।।2।।

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तजहा - 1 सुयं मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्व भवइ, 2. एगग्ग चित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ, 3 अप्पाणं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्व भवइ, 4 ठिओ पर ठावइस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ चउत्थं पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ– (सुयसमाही) श्रुतसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) है, (तजहा) वे इस प्रकार है– 1 (मे) अध्ययन करने से मुझे (सुय) श्रुतज्ञान का (भविस्सइत्ति) लाभ होगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्व-अज्झाइयव्वय भवइ) अध्ययन करे। 2 अध्ययन करने से (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता (भविस्सामि त्ति) होगी ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। 3 (अप्पाण) मै अपनी आत्मा को (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर करूगा– ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। 4 (ठिओ) यदि मै अपने धर्म मे स्थिर होऊगा तो (पर) दूसरो को भी (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर कर सकूगा– ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे (चउत्थ) यह अन्तिम चौथा (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है –

'नाणमेगग्ग चित्तो य, ठिओ ठावयई परं।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुय समाहिए'।।3।।'

अन्वयार्थ– (सुयाणि) शास्त्रो का (अहिज्जित्ता) अध्ययन करने से (नाण) ज्ञान की प्राप्ति होती है (एगग्गचित्तो) चित्त की

एकाग्रता होती है (ठिओ य) अपनी आत्मा को धर्म मे स्थिर करता है (य) और (पर) दूसरो को भी (ठावयई) धर्म मे स्थिर करता है इसलिए मुनि को सदा (सुयसमाहिए) श्रुतसमाधि मे (रओ) सलग्न रहना चाहिए।।3।।

चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ, तंजहा - 1 नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, 2 नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, 3 नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, 4 नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ– (तवसमाही) तपसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) है, (तजहा) वे इस प्रकार है– 1 (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो के लिए एव किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। 2 (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखो के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। 3 (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। 4 (अन्नत्थनिज्जरट्ठयाए) कर्म निर्जरा के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के लिए (तव) तपस्या (न अहिट्ठिज्जा) न करे (चउत्थ) यह अन्तिम चतुर्थ (एय) पद (भवइ) है। (य) और (इत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी है। वह इस प्रकार है–

'विविहगुणतवोरए निच्च, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए'।।4।।

अन्वयार्थ– मोक्षाभिलाषी मुनि को चाहिए कि वह (सया) सदा (तवसमाहिए) तपसमाधि मे (जुत्तो) सलग्न रहे तथा (निच्च) निरन्तर (विविहगुणतवोरए) विविध गुणयुक्त तप मे रत रहता हुआ वह मुनि (निरासए) इहलौकिक और पारलौकिक सुखो के लिए

आशा न रक्खे किन्तु (निज्जरट्ठिए) केवल कर्मनिर्जरा के लिए तप करे (तवसा) इस प्रकार के तप से वह (पुराणपावग) पूर्वसचित पापकर्मो को (धुणइ) नष्ट कर डालता है।।4।।

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ तजहा .- 1 नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, 2 नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा 3 नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयार-महिट्ठिज्जा, 4. नन्नत्थ आरहंतेहि हेउहि आयारमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ– (आयारसमाही) आचार समाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं (तजहा) वे इस प्रकार हैं – 1 (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए एव लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (आयार) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। 2 (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए (आयार) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। 3 (कित्तिवण्ण-सद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक-श्लाघा के लिए भी आयार) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। 4 (आरहतेहि ...हि अन्नत्थ) जैन सिद्धान्त में कहे हुए कारणो के अतिरिक्त किसी के लिए भी (आयार) आचार का पालन (न अहिट्ठिज्जा) न करे किन्तु आते हुए आश्रवो के निरोध के लिए आचार का पालन करे क्योकि किसी प्रकार की आशा न रखकर आचार का पालन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है– (चउत्थ) यह अन्तिम चतुर्थ (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय का (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है, वह इस प्रकार है –

'जिणवयणरए अतिंतिणे, पडिपुन्नाययमाययट्ठिए।
आयारसमाहिसंवुडे, भवइ य दंते भावसंधए।।5।।

अन्वयार्थ– (जिणवयणरए) जिन–वचनो पर अटल श्रद्धा

रखने वाला (अतितिणे) कठोर वचन न बोलने वाला (पडिपुन्न) शास्त्रो के तत्त्वो को भली-भाति जानने वाला (आयय-आयइ) निरन्तर (आययट्ठिए) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला (दते) इन्द्रियो का दमन करने वाला (य) और (आयारसमाहिसवुडे) आचारसमाधि द्वारा आश्रवो का निरोध करने वाला मुनि (भावसधए भवइ) शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।।5।।

अभिगम चउरो समाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ।
विउलहिय सुहावह पुणो, कुव्वइ य सो पयं खेममप्पणो।।6।।

अन्वयार्थ– (सुविसुद्धो) निर्मल चित्त वाला (सुसमाहिअप्पओ) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखने वाला (सो) मुनि (चउरो) चारो प्रकार की (समाहिओ) समाधियो के स्वरूप को (अभिगम) जानकर (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (विउलहिय) पूर्ण हितकारी (य) और (सुहावह) सुखकारी (पुणो) एव (खेम) कल्याणकारी (पय) निर्वाण पद को (कुव्वइ) प्राप्त करता है।।6।।

जाइ मरणाओ मुच्चइ, इत्थंथं च चएइ सव्वसो।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए।।7।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– उपरोक्त गुणो को धारण करने वाला मुनि (इत्थथ-इत्थत्थ) नरकादि पर्यायो का (सव्वसो) सर्वथा (चएइ) त्याग कर देता है अर्थात् नरकादि गतियो मे नही जाता (य) किन्तु वह (जाइमरणाओ) जन्म–मरण के चक्कर से (मुच्चइ) छूट जाता है (वा) तथा (सासए) शाश्वत (सिद्धे) सिद्ध (हवइ) हो जाता है (वा) अथवा (अप्परए) यदि कुछ कर्म शेष रह जाते है तो अल्प काम-विकार वाला- उत्तम कोटि का (महिड्ढिए) महान् ऋद्धिसपन्न (देवे) अनुत्तर विमानवासी देव होता है।।7।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।



'सभिक्खु' नामक दसवां अध्ययन

निक्खम्ममाणाइ य बुद्धवयणे, निच्चं चित्तसमाहिओ हविज्जा।
इत्थीण वसं न यावि गच्छे, वंतं नो पडिआयइ जे स भिक्खू।।1।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (आणाइ) महापुरुषो के उपदेश से (निक्खम्म) दीक्षा लेकर (बुद्धवयणे) जिनवचनो मे (निच्च) सदा (चित्तसमाहिओ) स्थिरचित्त वाला (हविज्जा) होता है (यावि) और (इत्थीण) स्त्रियो के (वस न गच्छे) वशीभूत नहीं होता तथा (वत) वमन किये हुए– छोडे हुए भोगो को (नो पडिआयइ) फिर स्वीकार करने की इच्छा नहीं करता (स) वह (भिक्खू) शास्त्रोक्त विधि से तप द्वारा पूर्वसचित कर्मो को भेदन करने वाला भिक्षु कहलाता है।।1।।

पुढविं न खणे न खणावए, सीओदग न पिए न पियावए।
अगणिसत्थं जहा सुनिसियं, त न जले जलावए जे स भिक्खू।।2।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (पुढवि) सचित्त पृथ्वी को (न खणे) स्वय नहीं खोदता (न खणावए) दूसरो से नहीं खुदवाता और खोदने वालो की अनुमोदना भी नहीं करता। जो (सीओदग) सचित्त जल को (न पिए) स्वय नहीं पीता (न पियावए) दूसरों को नहीं पिलाता और पीने वालो की अनुमोदना भी नही करता– (सत्थ जहा सुनिसिय) खड्गदि तीक्ष्ण शस्त्र के समान (त अगणि) अग्नि को (न जले) स्वय नहीं जलाता (न जलावए) दूसरो से नहीं जलवाता और जलाने वालो की अनुमोदना भी न॒ि करता अर्थात् जो पृथ्वीकाय, अप्काय,

तेउकाय की तीन करण तीन योग से हिसा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।2।।

अनिलेण न वीए न वीयावए, हरियाणि न छिंदे न छिदावए।
वीयाणि सया विवज्जयतो, सचित्त नाहारए जे से भिक्खू।।3।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (अनिलेण) पखे आदि से (न वीए) स्वय हवा नही करता (न वीयावए) दूसरो से हवा नहीं करवाता और हवा करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (हरियाणि) तरु, लता आदि वनस्पतिकाय का (न छिदे) छेदन नही करता (न छिदावए) दूसरो से छेदन नहीं करवाता और छेदन करने वालो की अनुमोदना भी नहीं करता और यदि (बीयाणि) मार्ग मे सचित्त बीज आदि पडे हो तो उन्हे (विवज्जयतो) वर्जकर– बचाकर चलता है और जो (सया) कभी भी (सचित्त) सचित्त वस्तु का (नाहारए) आहार नहीं करता एव न दूसरो को कराता है और सचित्त वस्तु का आहार करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।3।।

वहणं तसथावराण होइ, पुढवीतणकट्ठनिस्सियाणं।
तम्हा उद्देसियं न भुंजे, नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू।।4।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (उद्देसिय) औद्देशिक (न भुंजे) नहीं भोगता (न पए) जो स्वय अन्नादि को नही पकाता (नो वि पयावए) न दूसरो से पकवाता है और पकाने वालो की अनुमोदना भी नहीं करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है (तम्हा) क्योकि भोजन पकाने से (पुढवीतण कट्ठनिस्सियाण) पृथ्वी, तृण और काष्ठ के आश्रय मे रहे हुए (तसथावराण-ण) त्रस और स्थावर जीवो की (वहण) हिसा (होइ) होती है- इसलिए भिक्षु ऐसी प्रवृत्ति नहीं करता।।4।।

⊛ किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधा कर्म और यदि दूसरा साधु ले तो औद्देशिक।

रोइअ नायपुत्तवयणे, अत्तसमे मन्निज्ज छप्पि काए।
पंच य फासे महव्वयाइ, पचासवसंवरे जे स भिक्खू।।5।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (नायपुत्तवयणे) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो को (रोइअ) श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके (छप्पिकाए) छ जीव निकाय को (अत्तसमे) अपनी आत्मा के समान (मन्निज्ज) मानता हे (पच) पाच (महव्वयाइ) महाव्रतो की (फासे) सम्यक् आराधना करता है (य) और (पचासवसवरे) पाच आश्रवो का निरोध करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।5।।

चत्तारि वमे सया कसाए, धुवजोगी हविज्ज बुद्धवयणे।
अहणे निज्जायरूवरयए, गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू।।6।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (चत्तारि) क्रोध, मान, माया, लोभ– इन चारो (कसाए) कषायो को (वमे) त्यागता है (बुद्धवयणे) तीर्थकर देवो के प्रवचनो मे (सया) सदा (धुवजोगी) ध्रुवयोगी– अटल श्रद्धा रखने वाला (हविज्ज) होता है (अहणे निज्जायरूवरयए) जिसने गाय, भैस आदि चतुष्पदादि धन तथा सोना-चादी आदि सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया है और (गिहिजोगं) जो गृहस्थो के साथ अति परिचय (परिवज्जए) नही रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।6।।

सम्मद्दिट्ठी सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, मणवयकाय सुसंवुडे जे स भिक्खू।।7।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (सम्मद्दिट्ठी) सम्यग् दृष्टि है (य) और (नाणे तवे संजमे) ज्ञान, तप, सयम के विषय मे जो (सया) सदा (हु) पूर्ण (अमूढे) श्रद्धा एव दृढ विश्वास (अत्थि) रखता है (मण वय काय सुसवुडे) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से युक्त है और जो (तवसा) तपस्या द्वारा (पुराणपावगं) पूर्वोपार्जित पापकर्मो को (धुणइ) नष्ट करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।7।।

तहेव असण पाणग वा, विविह खाइम साइम लभित्ता।
होही अट्ठो सुए परे वा, त न निहे न निहावए जे स भिक्खू।।8।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (जे) जो (विविह) अनेक प्रकार के (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम) खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थो को (लभित्ता) प्राप्त करके (सुए) कल (वा) अथवा (परे) परसो या और कभी (अट्ठो होही) यह पदार्थ काम आयेगा ऐसा विचार कर जो (त) उसको (न निहे) सग्रह कर बासी नही रखता (न निहावए) दूसरो से बासी नही रखवाता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।8।।

तहेव आसणं पाणग वा, विविह खाइम साइम लभित्ता।
छदिय साहम्मियाण भुजे, भुच्चा सज्झायरए जे स भिक्खू।।9।।

अन्वयार्थ– (तहेव) इसी प्रकार (जे) जो (विविह) अनेक प्रकार के (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम) खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थो को (लभित्ता) प्राप्त करके फिर (साहम्मियाण) अपने स्वधर्मी साधुओ को (छदिय) बुलाकर (भुजे) भोजन करता है और (भुच्चा) भोजन करने के बाद (सज्झायरए) स्वाध्यायादि मे रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।9।।

न य वुग्गहिय कह कहिज्जा, न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते।
सजमे धुव जोगेण जुत्ते, उवसते अविहेडए जे स भिक्खू।।10।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (वुग्गहिय) कलह उत्पन्न करने वाली (कह) कथा (न य कहिज्जा) नही कहता (न य कुप्पे) किसी पर क्रोध नहीं करता (निहुइदिए) इन्द्रियो को सदा वश मे रखता है (पसते) मन को शान्त रखता है (सजमे धुव जोगेण जुत्ते-सजमधुवजोग जुत्ते) जो सयम मे सदा तल्लीन रहता है (उवसते) कष्ट पडने पर भी जो आकुल-व्याकुल नही होता (अविहेडए) और कालोकाल करने योग्य

पडिलेहणादि कार्यो मे जो उपेक्षा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।10।।

जो सहइ उ गामकंटए, अक्कोसपहारतज्जणाओ य।
भयभेरवसद्दसप्पहासे, समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू।।11।

अन्वयार्थ– (जो) जो (गामकटए) श्रोत्रादि इन्द्रियो को काटे के समान दु ख उत्पन्न करने वाले (अक्कोसपहारतज्जणाओ) कठोर वचन, प्रहार और ताडना-तर्जनादि को (उ-हु) समभावपूर्वक (सहइ) सहन कर लेता है (य) और (भयभेरवसद्दसप्पहासे) जहा अत्यन्त भय को उत्पन्न करने वाले भूत–बेताल आदि के भयकर शब्द होते हो, ऐसे स्थानो मे भी (जे) जो निर्भय होकर ध्यानादि मे निश्चल बना रहता है (य) और (समसुह दुक्खसहे) जो सुख-दु ख को समान समझ कर समभाव रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।11।।

पडिमं पडिवज्जिया मसाणे, नो भीयए भयभेरवाइं दिस्स।
विविहगुणतवोरए य निच्चं, न सरीरं चाभिकंखए जे स भिक्खू।।12।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (निच्च) सदा (विविहगुणतवोरए) नाना प्रकार के मूलगुण–उत्तरगुणो मे रत रहता है (य) और (मसाणे) शमशान भूमि मे (पडिम) मासिकी आदि भिक्षु पडिमा को (पडिवज्जिया) स्वीकार करके ध्यान मे खडा हुआ जो मुनि (भयभेरवाइ) भूत–बेताल आदि के भयकर रूपो को (दिस्स) देखकर एव भयकर शब्दो को सुनकर भी (नो भीयए) नही डरता है (च) तथा (सरीर) जो शरीर पर भी (न अभिकखए) ममत्व भाव नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।12।।

असइं वोसट्ठ चत्तदेहे, अक्कुट्ठे द हए लूसिए वा।
पुढविसमे मुणी हविज्जा, अनियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू।।13।।

अन्यवयार्थ– (जे) जो (मुणी) मुनि (असइ) कभी भी (वोसट्ठचत्तदेहे) शरीर की विभूषा नही करता एव शरीर पर ममत्व भी नही रखता (अक्कुट्ठे) कठोर वचनो द्वारा आक्षेप किया जाने पर (व) अथवा (हए) लकडी आदि से पीटे जाने पर (वा) अथवा (लूसिए) शस्त्रादि से छेदन-भेदन किये जाने पर भी जो (पुढविसमे हविज्जा) पृथ्वी के समान समभावपूर्वक सहन कर लेता है (अनियाणे) जो किसी तरह का नियाणा नही करता तथा (अकोउहल्ले) नाच, गान आदि मे रुचि नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।13।।

अभिभूय काएण परीसहाइ, समुद्धरे जाइपहाउ अप्पयं।
विइत्तु जाईमरण महब्भय, तवे रए सामणिए जे स भिक्खू।।14।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (काएण) शरीर से (परीसहाइ) परीषहो को (अभिभूय) जीतकर (जाइपहाउ) ससार-समुद्र से (अप्पय) अपनी का (समुद्धरे) उद्धार कर लेता है तथा (जाईमरण) जन्म-मरण को (महब्भय) महाभयकारी एव अनन्त दुखो का कारण (विइत्तु) जानकर (सामणिए) सयम और (तवे) तप मे (रए) रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।14।।

हत्थसंजए पायसजए, वायसंजए सजइदिए।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा, सुत्तत्थ च विआणइ जे स भिक्खू।।15।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (हत्थसजए) हाथो से सयत है (पायसजए) पैरो से सयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवो को कछुए की तरह सकोच कर रखता है और आवश्यकता पडने पर यतनापूर्वक कार्य करता है (वायसजए) जो वचन से सयत है अर्थात् किसी को सावद्य एव परपीडाकारी वचन नही कहता तथा (सजइदिए) जो सब इन्द्रियो को वश मे रखता है (अज्झप्परए) अध्यात्म रस मे एव धर्मध्यान, शुक्लध्यान मे रत रहता है (सुसमाहिअप्पा) जो संयम मे अपनी आत्मा को समाधिवत रखता है (च) और (सुत्तत्थ)

और अर्थ को यथार्थ रूप से (विआणइ) जानता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।15।।

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे, अन्नायउछ पुलनिप्पुलाए।
कयविक्कयसनिहिओ विरए, सव्वसगावगए य जे स भिक्खू।।16।।

अन्वयार्थ– (जं) जो (उवहिम्मि) वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि धर्मोपकरणो मे (अमुच्छिए) मूर्च्छाभाव नही रखता (अगिद्धे) जो किसी भी पदार्थ मे गृद्धि भाव नहीं रखता एव सांसारिक प्रतिवन्धो से अलग रहता हे (अन्नायउछ) अज्ञात घरो से थोडा–थोडा मागकर लाता है (पुलनिप्पुलाए) सयम को दूषित करने वाले दोपो का कदापि सेवन नही करता (कयविक्कयसनिहिओ विरए) खरीदना, वेचना, सग्रह करना आदि व्यापारिक कार्यो से जो सदा विरक्त रहता है (य) और (सव्वसगावगए) जो सव सग एव आसक्तियो को छोड देता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।16।।

अलोल भिक्खू न रसेसु गिज्झे, उंछं चरे जीविय नाभिकखे।
इड्ढि च सक्कारण-पूयणं च, चए ठिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू।।17।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (भिक्खू) साधु (अलोल-अलोलु) लोलुपता से रहित होकर (रसेसु) किसी भी प्रकार के रसो मे (न गिज्झे) आसक्त नही होता (उछ) अज्ञात घरो से (चरे) गोचरी करता है अर्थात् अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार लेकर अपनी सयम यात्रा का निर्वाह करता है (जीविय नाभिकखे-कखी) मरणात कष्ट पडने पर भी जो असयम जीवन की इच्छा नही करता (च) और जो (इड्ढि) ऋद्धि (सक्कारणपूयण च) सत्कार और पूजा–प्रतिष्ठा को (चए) नही चाहता और (अणिहे) जो माया-कपट रहित होकर (ठिअप्पा) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।17।।

न परं वइज्जासि अयं कुसीले, जेण च कुप्पिज्ज न त वइज्जा।
जाणिय पत्तेय पुण्ण पावं, अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खू।।18।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (पर) किसी भी दूसरे व्यक्ति को (अय) यह (कुसीले) दुराचारी है– ऐसा (न वइज्जासि) वचन नही बोलता (च) और (जेण-जेण) ऐसे वचन जिन्हे सुनकर (कुप्पिज्ज) दूसरो को क्रोध उत्पन्न हो (त) वैसे वचन (न वइज्जा) कभी नही बोलता (पत्तेय) प्रत्येक जीव (पुण्णपाव) अपने-अपने पुण्य-पाप शुभाशुभ कर्मो के अनुसार सुख-दु ख भोगते है (जाणिय) ऐसा जानकर जो अपने ही दोषो को दूर करता है तथा (अत्ताण) अपने–आपको (न समुक्कसे) सब से बढकर एव उत्कृष्ट मानकर जो अभिमान नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।18।।

न जाइमत्ते न य रूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुंएणमत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू।।19।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (न जाइमत्ते) जाति का मद नहीं करता (न रूवमत्ते) रूप का मद नही करता (न लाभमत्ते) लाभ का मद नहीं करता (य) और (न सुएणमत्ते) श्रुत-ज्ञान का मद नहीं करता (सव्वाणि) इस प्रकार सब (मयाणि) मदो को (विवज्जइत्ता) छोडकर (धम्मज्झाणरए) धर्मध्यान मे सदा लीन रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।19।।

पवेयए अज्जपयं महामुणी, धम्मे ठिओ ठावयई परं पि।
निक्खम्म वज्जिजज्ज कुसील लिंग, न यावि हास कुहए जे स भिक्खू।।20।।

अन्वयार्थ– (जे) जो (महामुणी) महामुनि (अज्जपय) शुद्ध एव सच्चे धर्म का (पवेयए) उपदेश देता है (धम्मे) जो स्वय अपनी आत्मा को सद्धर्म मे (ठिओ) स्थिर करके (पर पि) दूसरो को भी (ठावयई) धर्म मे स्थिर करता है (निक्खम्म) दीक्षा लेकर (कुसीललिग) आरम्भ-समारम्भ रूप गृहस्थ की क्रिया को एव कुसाधुओ के सग को जो (वज्जिजज्ज) छोड देता है (यावि) और (न हास कुहए) हास्य

को उत्पन्न करने वाली कुचेष्टाए एव ठट्ठा मसकरी आदि नहीं करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है।।20।।

तं देहवासं असुइं असासयं, सया चए निच्चहिअट्ठिअप्पा।
छिंदित्तु जाई मरणस्स बंधणं, उवेइ भिक्खू अपुणागमं गइं।।21।।
त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ— (निच्चहिअट्ठि अप्पा) मोक्ष रूपी हित एव कल्याण मार्ग मे सदा अपनी आत्मा को स्थिर रखने वाला (भिक्खू) साधु (त) इस (असुइ) अपवित्र और (असासय) अशाश्वत (देहवास) शरीर को (सया) सदा के लिए (चए) छोडकर तथा (जाई मरणस्स) जन्म-मरण के (बधण) बन्धन को (छिदित्तु) काट कर (अपुणागम) पुनरागमनरहित अर्थात् जहा जाकर फिर ससार मे लौटना न पडे ऐसी (गइ) सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है।।21।। (त्ति बेमि) श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते है कि—हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर से जैसा मैने सुना है वैसा ही तुझे कहा है, मैंने अपनी बुद्धि से कुछ नहीं जोडा है।।



'रतिवाक्य' नामक पहली चूलिका

इह खलु भो ! पव्वइएण उप्पन्नदुक्खेण सजमे अरइसमावन्न चित्तेण ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएण चेव हयररिसगयकुसपोय-पडागाभूयाइ इमाइ अट्ठारस ठाणाइ सम्म सपडिलेहियव्वाइं भवति।

अन्वयार्थ– गुरु महाराज कहते है कि–(भो) हे शिष्यो ! (पव्वइएण) दीक्षा लेने के बाद (उप्पन्नदुक्खेण) किसी समय शारीरिक एव मानसिक कष्ट आ पडने पर यदि कदाचित् (सजमे) सयम मे (अरइसमावन्न चित्तेण) अरति उत्पन्न हो जाय अर्थात् सयम मार्ग मे चित्त का प्रेम न रहे और (ओहाणुप्पेहिणा) सयम छोडकर वापिस गृहस्थाश्रम मे चले जाने की इच्छा होती हो तो (अणोहाइएण चेव) सयम छोडने के पहले साधु को (इह खलु इमाइ) इन (अट्ठारस ठाणाइ) अठारह स्थानो का (सम्म) खूब अच्छी तरह से (सपडिलेहियव्वाइ भवति) विचार करना चाहिये क्योकि (हयररिस–गयकुसपोयपडागाभूयाइ) जिस प्रकार लगाम से चचल घोडा वश मे आ जाता है, अकुश से मदोन्मत्त हाथी वश मे आ जाता है, मार्ग भूलकर समुद्र मे इधर-उधर गोते खाती हुई नाव पतवार द्वारा ठीक रास्ते पर आ जाती है, उसी प्रकार आगे कहे जाने वाले अठारह स्थानो पर विचार करने से चचल एव डावाडोल बना हुआ चित्त भी सयम मे पुन स्थिर हो जाता है।।

तंजहा-ह भो ! 1 दुस्समाए दुप्पजीवी, 2 लहुसगा इत्तरिया गिहीण कामभोगा, 3. भुज्जो य साइ बहुला मणुस्सा, 4 इमे य मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सई, 5. ओम-जण पुरक्कारे, 6 वतस्स य पडिआयण, 7 अहरगइवासोव सपया 8 दुल्लहे खलु भो ! गिहीण धम्मे गिहवासमज्झे वसताण, 9 आयके से वहाय होइ, 10. सकप्पे से वहाय होइ, 11 सोवक्केसे गिहिवासे निरुवक्केसे परियाए, 12 बधे गिहिवासे मुक्खे परियाए, 13 सावज्जे गिहिवासे अणवज्जे परियाए, 14. बहुसाहारणा गिहीणं कामभोगा, 15 पत्तेय पुण्णपाव, 16 अणिच्चे खलु भो ! मणुयाण जीविए कुसग्गजलबिन्दुचचले, 17. बहु च खलु भो ! पावं कम्म पगडं, 18 पावाण च खलु भो ! कडाणं कम्माण पुव्वि दुच्चिन्नाणं दुप्पडिकंताण वेइत्ता मुक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता। अट्ठारसमं पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ– (तजहा) वे अठारह स्थान इस प्रकार हैं – 1 (ह भो) अपनी आत्मा को सबोधित कर इस प्रकार विचार करना चाहिए कि हे आत्मन् (दुस्समाए) इस दु षम काल का जीवन ही (दुप्पजीवी) ्खमय है। 2 इस दु षम काल के अन्दर (गिहीण) गृहस्थ लोगो के (कामभोगा) कामभोग (लहुसगा) तुच्छ और (इत्तरिया) अल्पकालीन हैं। 3 (भुज्जो य) और (मणुस्सा) इस दु षम काल के बहुत–से मनुष्य (साइबहुला-सायबहुला) बडे कपटी एव मायावी होते हे। 4 (मे) मुझे (दुक्खे) जो दु ख उत्पन्न हुआ है (इमे य) वह (न चिरकालोवट्ठाई) बहुत काल तक नही रहेगा। 5 (ओमजणपुरक्कारे) सयम छोडकर गृहस्थाश्रम मे जाने वालो को नीच से नीच पुरुषो की खुशामद एव सेवा करनी पडती है। 6 (य) और (वतस्स) सयम को छोडकर गृहस्थाश्रम मे जाने से जिन पदार्थो का एक बार वमन-त्याग कर दिया है (पडिआयण) उन्ही का फिर सेवन करना पडेगा। 7 (अहरगइवासोवसपया) सयम छोडकर गृहस्थाश्रम मे जाना मानो

साक्षात् नरक गति मे जाने की तैयारी करने के समान है। 8 (भो) हे आत्मन् (गिहवासमज्झे) गृहस्थाश्रम रूप पाश मे (वसताण) जकडे हुए (गिहीण) गृहस्थो के लिए (धम्मे) धर्म का पालन करना (खलु दुल्लहे-दुल्लभे) निश्चय ही कठिन है। 9 (आयके) यह शरीर रोगो का घर ही हे, इसमे अचानक रोग उत्पन्न हो जाते है (से) वे रोग तत्काल (वहाय होइ) मृत्यु के मुख मे पहुचा देते है उस समय धर्म के सिवाय कोई भी इस जीव का सहायक नही होता। 10 (सकप्पे) इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोग से सदा सकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहते है (से) इससे उसका (वहाय) अहित (होइ) होता है और आर्तध्यान-रौद्रध्यान बना रहता है। 11 (गिहवासे) गृहस्थाश्रम (सोवक्केसे) क्लेशयुक्त है और (परियाए) सयम (निरुवक्केसे) कलेशरहित है क्योकि सच्ची शाति त्याग मे ही है। 12 (गिहवासे) गृहस्थावास (बधे) बन्धन रूप है– कर्मो के बन्धन का स्थान है और (परियाए) सयम (मुक्खे) मोक्षरूप है अर्थात् कर्मो से छुडाने वाला है क्योकि त्याग मे ही सच्ची मुक्ति है। 13 (गिहवासे) गृहस्थावास (सावज्जे) पापस्थान है और (परियाए) सयम (अणवज्जे) निष्पाप एव पवित्र है। 14 (गिहीण) गृहस्थो के (कामभोगा) कामभोग (बहुसाहारणा) तुच्छ एव साधारण है। 15 (पत्तेय) प्रत्येक प्राणी के (पुण्णपाव) पुण्य-पाप अलग-अलग हैं अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने-अपने शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दु ख भोगते है। 16 (भो) हे आत्मन् ! (मणुयाण) मनुष्यो का (जीविए) जीवन (कुसग्गजलबिदु चचले) कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जलबिदु के समान अति चचल हे (अणिच्चे खलु) एव क्षणिक है। 17 (च) और (भो) हे आत्मन् ! (खलु) निश्चय ही मैने (बहु) बहुत (पाव कम्म) पाप कर्म (पगड) किये हे अथवा मेरे बहुत ही प्रबल पापकर्मो का उदय है इसीलिए सयम छोड देने के निन्दनीय विचार मेरे हृदय मे उत्पन्न हो रहे है। 18 (च) और (भो) हे आत्मन् ! (दुच्चिन्नाण) दुष्ट भावो से (दुप्पडिकताण) तथा मिथ्यात्व

आदि से (कडाण) उपार्जन किए हुए (पुव्वि पावाण कम्माण) पहले के पाप कर्मो के फल को (वेइत्ता) भोगने के बाद ही मोक्ष होता है किन्तु (अवेइत्ता) कर्मो का फल भोगे बिना (नत्थि) मोक्ष नही होता (वा) अथवा (तवसा) तप द्वारा (झोसइत्ता) कर्मो का क्षय कर देने पर ही मोक्ष होता है (अट्ठारसम) यह अठारहवा (पय) पद (भवइ) हे (अ) ओर (इत्थ) इन अठारह विषयो पर (सिलोगो) श्लोक भी (भवइ) है वे इस प्रकार हे –

जया य चयई धम्मं, अणज्जो भोगकारणा।
से तत्थ मुच्छिए बाले, आयइ नावबुज्झइ।।1।।

अन्वयार्थ– (जया य) जब (अणज्जो) कोई अनार्य पुरुष (भोगकारणा) भोगो की इच्छा से (धम्म) सयम को (चयई) छोडता है तब (तत्थ) कामभोगो मे (मुच्छिए) आसक्त बना हुआ (से) वह (बाले) अज्ञानी (आयइ) भविष्यत् काल के लिए (नावबुज्झइ) जरा भी विचार नही करता।।1।।

जया ओहाविओ होइ, इंदो वा पडिओ छमं।
सव्व-धम्म परिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ।।2।।

अन्वयार्थ– (वा) जिस प्रकार स्वर्गलोक से चवकर (छम) पृथ्वी पर (पडिओ) उत्पन्न होने वाला (इदो) इन्द्र अपनी पूर्व ऋद्धि को याद कर पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (जया) जब कोई साधु (ओहावियो) सयम से भ्रष्ट होकर (सव्वधम्मपरिब्भट्ठो) सब धर्मो से भ्रष्ट (होइ) हो जाता है तब (स) वह (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।।2।।

जया य वंदिमो होइ, पच्छा होइ अवदिमो।
देवया व चुया ठाणा, स पच्छा परितप्पइ।।3।।

अन्वयार्थ– (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (वदिमो) वह सब लोगो का वन्दनीय (होइ) होता है (य) किन्तु

(पच्छा) सयम छाड देने के बाद वही (अवदिमो) अवन्दनीय (होइ) हो जाता है (ठाणा चुया दवया व) जिस प्रकार इन्द्र द्वारा परित्यक्ता देवी पश्चात्ताप करती है उसी प्रकार (स) वह सयमभ्रष्ट साधु (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता हे।।3।।

जया य पूइमो होइ, पच्छा होइ अपूइमो।
राया व रज्जपब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ।।4।।

अन्वयार्थ– (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (पूइमो) सब लोगो से पूजनीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम छोड देने के बाद (अपूइमो) अपूजनीय (होइ) हो जाता है (रज्जपब्भट्ठो राया व) जिस प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (स) वह साधु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।।4।।

जया य माणिमो होइ, पच्छा होइ अमाणिमो।
सिट्ठिव्व कब्बडे छूढो, स पच्छा परितप्पइ।।5।।

अन्वयार्थ– (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (माणिमो) सब लोगो का माननीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (अमाणिमो) अमाननीय (होइ) हो जाता है (कब्बडे) जिस प्रकार छोटे–से गाव मे (छूढो) अनिच्छापूर्वक रखा हुआ (सिट्ठिव्व) सेठ पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (स) वह सयमभ्रष्ट साधु भी (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।।5।।

जया य थेरओ होइ, समइक्कंत जुव्वणो।
मच्छुव्व गलं गिलित्ता, स पच्छा परितप्पइ।।6।।

अन्वयार्थ– (मच्छुव्व) जिस प्रकार लोहे के काटे पर लगे हुए मास को खाने के लिए मछली उस पर झपटती है किन्तु (गल गिलित्ता) गले मे काटा फस जाने के कारण पश्चात्ताप करती हुई

मृत्यु को प्राप्त होती हे इसी प्रकार (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हुआ साधु (समइक्कत जुवणो) योवन अवस्था के वीत जाने पर (जया य) जब (थेरओ) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब (स) वह (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।।6।।

भावार्थ– जिस प्रकार मछली न तो उस लोहे के काटे को गले से नीचे उतार सकती है ओर न गले से बाहिर निकाल सकती है उसी प्रकार वह सयमभ्रष्ट वृद्ध साधु न तो भोगो को भोग सकता है और न उन्हे छोड सकता है। यो ही कष्टमय जीवन समाप्त कर मृत्यु के मुख मे पहुच जाता है।

जया य कुकुडुंबस्स, कुतत्तीहिं विहम्मइ।
हत्थी व बंधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पइ।।7।।

अन्वयार्थ– विषय भोगो के झूठे लालच मे फस कर सयम से पतित होने वाले साधु को (जाय य) जब (कुकुडुबस्स) अनुकूल परिवार एव इष्ट सयोगो की प्राप्ति नही होती तब (कुतत्तीहि) वह आर्त–रौद्रध्यान करता हुआ अनेक प्रकार की चिन्ताओ से (विहम्मइ) चिन्तित रहता है और (बंधणे) बन्धन मे (बद्धो) बधे हुए (हत्थी व) हाथी के समान (स) वह (पच्छा) पीछे बार-बार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।।7।।

पुत्तदार परीकिण्णो, मोहसंताण संतओ।
पंकोसन्नो जहा नागो, स पच्छा परितप्पइ।।8।।

अन्वयार्थ– (पुत्तदारपरीकिण्णो) पुत्र-स्त्री आदि से घिरा हुआ और (मोहसताणसतओ) मोहपाश मे फसा हुआ (स) वह संयमभ्रष्ट साधु (पकोसन्नो) कीचड मे फसे हुए (जहा नागो) हाथी के समान (पच्छा) पीछे बार-बार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है।।8।।

अज्ज अहं गणी हुंतो, भाविअप्पा बहुस्सुओ।
जइऽह रमतो परियाए, सामण्णे जिणदेसिए।।9।।

अन्वयार्थ– सयम से पतित हुआ साधु इस प्रकार विचार करता है कि (जइऽह) यदि मै साधुपना न छोडता ओर (भाविअप्पा) भावितात्मा होकर (जिणदेसिए) जिनेश्वर देवो द्वारा प्ररूपित (सामण्णे परियाए) साधु धर्म का (रमतो) पालन करता हुआ (वहुस्सुओ) शास्त्रो का अभ्यास करता रहता तो (अज्ज) आज (अह) मै (गणी) गणी पद पर (हुतो) सुशोभित होता।।9।।

देवलोगसमाणो य, परियाओ महेसिण।
रयाणं अरयाण च, महानरय सारिसो।।10।।

अन्वयार्थ– (महेसिण) जो महर्षि (रयाण) सयम मे रत रहते है उनके लिए (परियाओ) सयम (देवलोगसमाणो य) देवलोक के सुखो के समान आनन्ददायक है (च) किन्तु (अरयाण) सयम मे रुचि न रखने वालो को (महानरय सारिसो) सयम नरक के समान दुखदायी प्रतीत होता है।।10।।

अमरोवमं जाणिय सुक्खमुत्तम, रयाण परियाइ तहाऽरयाण।
निरओवम जाणिय दुक्खमुत्तम, रमिज्ज तम्हा परियाइ पडिए।।11।।

अन्वयार्थ– (परियाइ) सयम मे (रयाण) रत रहने वाले महापुरुषो के लिए सयम (अवरोवम) देवलोक के (उत्तम) श्रेष्ठ (सुक्ख) सुखो के समान आनन्ददायक होता है (जाणिय) ऐसा जानकर (तहा) तथा (अरयाण) सयम मे रुचि नही रखने वालो को वही सयम (निरओवम) नरक के (उत्तम) घोर (दुक्ख) दु खो के समान दुखदायी प्रतीत होता हे (तम्हा) ऐसा (जाणिय) जानकर (पडिए) बुद्धिमान् साधु को (परियाइ) सयम मार्ग मे ही (रमिज्ज) रमण करना चाहिए।।11।।

धम्माउ भट्ठं सिरिओ अवेयं, जन्नग्गि विज्झाअमिवऽप्पत्तेय।
हीलति ण दुव्विहिय कुसीला, दाढुड्ढिय घोरविसं 2।

अन्वयार्थ– (जन्नग्गि) यज्ञ की अग्नि-जब तक जलती रहती है तब तक उसमे पवित्र समझ कर अग्निहोत्री ब्राह्मण उसमे घृतादि डालते है और प्रणाम करते है किन्तु (विज्झाअ) जब वह बुझकर (अप्पत्तेय) तेजरहित हो जाती है तब उसकी राख को बाहर फेंक देते है तथा (घोरविस व) जब तक साप के मुह मे भयकर विष को धारण करने वाली दाढे मौजूद रहती है तब तक सब लोग उससे डरते है किन्तु (दाढुड्डिय) जब उसकी वे दाढे मदारी द्वारा निकाल दी जाती है तब उससे कोई नही डरता प्रत्युत छोटे-छोटे बच्चे भी (नाग) उस सर्प को छेडते है और अनेक प्रकार का कष्ट पहुचाते है। (इव) इसी प्रकार जब तक साधु सयम का यथावत् पालन करता हुआ तपरूपी तेज से दीप्त रहता है तब तक सब लोग उसकी विनय-भक्ति एव सत्कार-सम्मान करते है किन्तु जब वही साधु (धम्माउ) सयम से (भट्ठ) भ्रष्ट हो जाता है और (सिरिओ) तपरूपी लक्ष्मी से (अवेय-ववेय) रहित होकर (दुव्विहिय) अयोग्य आचरण करने लग जाता है तब (कुसीला) आचारहीन सामान्य लोग भी (ण) उसकी (हीलति) अवहेलना एव तिरस्कार करने लग जाते हैं।।12।।

इहेवऽधम्मो अयसो अकित्ती, दुन्नामधिज्ज च पिहुज्जणम्मि।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो, सभिन्नवित्तस्स य हिट्ठओ गई।।13।।

अन्वयार्थ– (धम्माउ) सयम धर्म से (चुयस्स) पतित (अहम्मसेविणो) अधर्म का सेवन करने वाला (सभिन्नवित्तस्स) ग्रहण किये हुए व्रतो को खण्डित करने वाला साधु (इहेव) इस लोक मे (अधम्मो) अधर्म (अयसो) अपयश (य) और (अकित्ती) अकीर्ति को प्राप्त होता है (च) और (पिहुज्जणम्मि) साधारण लोगो मे भी (दुन्नामधिज्ज) बदनामी एव तिरस्कार को प्राप्त होता है तथा (हिट्ठओ गई) परलोक मे नरकादि नीच गतियो मे उत्पन्न होकर असह्य दुख भोगता है।।13।।

भुजित्तु भोगाइ पसज्झ चेयसा, तहाविह कट्टु असजम बहु।
गइ च गच्छे अणभिज्झिय दुह, बोही य से नो सुलहा पुणो पुणो।।14।।

अन्वयार्थ– (पसज्झचेयसा) तीव्र लालसा एव गृद्धिभावपूर्वक (भोगाइ) भोगो को (भुजित्तु) भोगकर (च) तथा (बहु) बहुत–से (तहाविह असजम) असयमपूर्ण निन्दनीय कार्यो का (कट्टु) आचरण करके जब वह सयमभ्रष्ट साधु कालधर्म को प्राप्त होता है तब (अणभिज्झिय-अणहिज्जिय) अनिष्ट (गइ) नरकादि गतियो मे (गच्छे) जाकर (दुह) अनेक दु ख भोगता है (य) ओर (से) उसे (पुणो पुणो) अनेक भवो मे भी (बोही) बोधबीज समकित एव जिनधर्म की प्राप्ति होना (नो सुलहा) सुलभ नही है।।14।।

इमस्स ता नेरइयस्स जंतुणो, दुहोवणीयस्स किलेसवत्तिणो।
पलिओवमं झिज्झइ सागरोवम, किमग पुण मज्झ इम मणोदुह।।15।।

अन्वयार्थ– सयम मे आने वाले आकस्मिक कष्टो से घबरा कर सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (नेरइयस्स) नरको मे अनेक बार उत्पन्न होकर (इमस्स जतुणो) मेरे इस जीव ने (किलेसवत्तिणो) अनेक क्लेश एव (दुहोवणियस्स) असह्य दु ख सहन किये है और (पलिओवम) वहा की पल्योपम और (सागरोवम) सागरोपम जैसी दु खदपूर्ण लम्बी आयु को भी (झिज्झइ-झिज्जइ) समाप्त कर वहा से निकल आया है (तो पुण) तो फिर (मज्झ) मेरा (इम) यह (मणोदुह) चारित्र विषयक मानसिक दु ख तो (किमग) है ही क्या चीज ? अर्थात् नरको मे पल्योपम तथा सागरोपम की लम्बी आयुष्य तक निरन्तर मिलने वाला अनन्त दु ख कहा और इस सयमी जीवन मे कभी-कभी आया हुआ थोडा-सा आकस्मिक दु ख कहा ? इन दोनो मे तो महान अन्तर है। ऐसा सोचकर साधु को समभावपूर्वक वह
लेना चाहिए।

न मे चिर दुक्खमिण भविस्सइ, असासया भोगपिवास जतुणो।
न चे सरीरेण इमेणऽविस्सइ, अविस्सई जीविय पज्जवेण मे।।16।।

अन्वयार्थ– दु ख से घबरा कर सयम छोडने वाले साधु को ऐसा विचार करना चाहिए कि (मे) मेरा (इण) यह (दुक्ख) दु ख (चिर) बहुत काल तक (न भविस्सइ) नहीं रहेगा- भोग भोगने की लालसा से सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को विचार करना चाहिए कि (जतुणो) जीव की (भोगपिवास) भोग पिपासा-विषयवासना (असासया) अशाश्वत है (चे) यदि यह विषयवासना (इमेण) इस (सरीरेण) शरीर मे शक्ति रहते (न अविस्सइ) नष्ट न होगी तो (मे) मेरी वृद्धावस्था आने पर अथवा (जीवियपज्जवेण) मृत्यु आने पर तो (अविस्सई) अवश्य नष्ट हो ही जाएगी अर्थात् जब यह शरीर ही अनित्य है तो विषयवासना नित्य किस प्रकार हो सकती है ?।।16।।

जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ, चइज्ज देहं न हु धम्म सासण।
तं तारिसं नो पइलंति इंदिया, उवित वाया व सुदंसणं गिरिं।।17।।

अन्वयार्थ– (एव) उपरोक्त रीति से विचार करने से (जस्स) जिसकी (अप्पा) आत्मा धर्म पर (उ) इतनी (निच्छिओ) दृढ (हविज्ज) जाती है कि अवसर पडने पर वह धर्म पर (देह) अपने शरीर को) प्रसन्नतापूर्वक न्यौछावर कर देता है (हु) किन्तु (न धम्मसासण) धर्म का त्याग नहीं करता। (व) जिस प्रकार (उवितवाया-उविति,वाया) प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु भी (सुदसण गिरिं) सुमेरु पर्वत को चलित नही कर सकती उसी प्रकार (इदिया) चचल इन्द्रिया भी (तारिस) मेरु पर्वत के समान दृढ (त) उस पूर्वोक्त मुनि को (नो पइलति-पइलिति) सयम मार्ग से विचलित नही कर सकतीं।।17।।

इच्चेव संपस्सिय बुद्धिमं नरो, आयं उवाय विविहं विआणिया।
काएण वाया अदु माणसेण, तिगुत्ति गुत्तो जिणवयण महिट्ठिज्जासि।।
।18।। त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (बुद्धिम) बुद्धिमान् (नरो) साधु (इच्चेव) उपरोक्त सब बातो पर (सपस्सिय) भली प्रकार विचार करके तथा (आय) ज्ञानादि लाभ के (उवाय) उपायो को (विआणिया) जानकर (माणसेण) मन (वाया) वचन (अदु) आर (काएण) काया रूप (तिगुत्तिगुत्तो) तीन गुप्तियो से गुप्त होकर (जिणवयण) जिनेश्वर देवो के वचनो पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए सयम का (अहिट्ठिज्जासि) यथावत् पालन करे। उपरोक्त अठारह स्थानो पर सम्यक् विचार करने से सयम से विचलित होता हुआ साधु का मन पुन सयम मे स्थिर हो जाता है।।18।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।।



'विविक्तचर्या' नामक दूसरी चूलिका

चूलिय तु पवक्खामि, सुय केवलिभासिय।
ज सुणित्तु सुपुण्णाण, धम्मे उप्पज्जए मई।।1।।

अन्वयार्थ– (केवलिभासिय) जो सर्वज्ञ प्रभु द्वारा प्ररूपित हे (सुय) श्रुतज्ञान रूप है और (ज) जिसे (सुणित्तु) सुनकर (सुपुण्णाण) पुण्यवान् जीवो की (धम्मे) धर्म मे (मई) श्रद्धा (उप्पज्जए) उत्पन्न होती है ऐसी (चूलिय) चूलिका का (पवक्खामि) मै वर्णन करता हू।।1।।

अणुसोयपट्ठियबहुजणम्मि, पडिसोयलद्धलक्खेण।
पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउकामेणं।।2।।

अन्वयार्थ– जिस प्रकार नदी मे गिरा हुआ काष्ठ प्रवाह के वेग से समुद्र की ओर जाता है उसी प्रकार (बहुजणम्मि) बहुत–से मनुष्य (अणुसोय पट्ठिय) विषय प्रवाह के वेग से ससार रूप समुद्र की ओर बहते है किन्तु (पडिसोय लद्ध लक्खेण) विषय प्रवाह से छूटकर (होउकामेण) मोक्ष जाने की इच्छा रखने वाले पुरुषो को चाहिए कि वे (अप्पा) अपनी आत्मा को (पडिसोयमेव) सदा विषय प्रवाह से दूर (दायव्वो) रक्खे।।2।।

अणुसोयसुहो लोओ, पडिसोओ आसवो सुविहिआण।
अणुसोओ ससारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो।।3।।

अन्वयार्थ– (ससारो) ससार (अणुसोओ) अनुस्रोत के समान है अर्थात् विषय-भोगो की तरफ ले जाने वाला है (तस्स) उस ससार से (उत्तारो) पार होना (पडिसोओ) प्रतिस्रोत कहलाता है। (सुविहिआण) साधु पुरुषो का (आसवो) सयम (पडिसोओ) प्रतिस्रोत अर्थात् विषयो से निवृत्ति रूप है इसकी तरफ प्रवृत्ति करना ससारी जीवो के लिए कठिन है क्योकि (लोओ) ससारी जीव तो (अणुसोय सुहो) अनुस्रोत मे ही सुख मानते है।।3।।

तम्हा आयारपरक्कमेण, सवरसमाहिबहुलेणं।
चरिया गुणा य नियमा य, हुंति साहूण दट्ठव्वा।।4।।

अन्वयार्थ– (तम्हा) इसलिए (आयारपरक्कमेण) साधु को ज्ञानादि आचारो को पालन करने मे प्रयत्न करना चाहिए और उसके द्वारा (सवरसमाहि बहुलेण) सवर और समाधि की आराधना करनी चाहिए (य) और (साहूण) साधुओ की (चरिया) जो चर्या (गुणा) गुण (य) और (नियमा) नियम है उनका (दट्ठव्वा हुति) यथासमय पूर्णरूप से पालन करना चाहिए।।4।।

अनिएयवासो समुयाणचरिया, अन्नायउंछं पइरिक्कया य।
अप्पोवही कलहविवज्जणा य, विहारचरिया इसिणं पसत्था।।5।।

अन्वयार्थ– (अनिएयवासो) अनियतवास- किसी विशेष कारण के बिना एक ही स्थान पर अधिक न ठहरना (समुयाणचरिया) समुदानचर्या- गरीब और श्रीमत सभी के घरो से सामुदानिकी भिक्षा ग्रहण करना एव अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार लेना (अन्नाय–उछ) अज्ञात घरो से भिक्षा ग्रहण करना (पइरिक्कया) स्त्री, पशु, पडग आदि से रहित एकान्त स्थान मे रहना (य) और (अप्पोवही) उपधि अर्थात् भण्डोपकरण आदि थोडे रखना (य) तथा (कलह विवज्जणा) किसी के साथ कलह न करना (विहारचरिया) यह विहारचर्या भगवतो ने (इसिण) मुनियो के लिए (पसत्था) प्रशस्त-कल्याणकारी बतलाई है।।5।।

आइन्नओमाणविवज्जणा य, ओसन्नदिट्ठाहडभत्तपाणे।
संसट्ठकप्पेण चरिज्ज भिक्खू, तज्जायसंसट्ठ जई जइज्जा।।6।।

अन्वयार्थ– (भिक्खू) गोचरी के लिए जाने वाले (जई) साधु को चाहिए कि (आइन्नओमाणविवज्जणा) जहा जीमनवार हो रहा हो और आने–जाने का मार्ग लोगो से खचाखच भरा हो– ऐसे भीड-भडक्के वाले स्थान मे तथा जिस जीमनवार मे भोजन कम बना हो तथा खाने वाले अधिक आ गए हो ऐसे स्थान मे गोचरी न जावे। (ओसन्न दिट्ठाहडभत्तपाणे) साधु को दीखती हुई तथा देखे हुए स्थान से लाई जा रही शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए (य) और (तज्जायससट्ठ) दाता जो आहारादि दे रहा हो, उसी से दाता के हाथ और चमचा आदि खरडे हुए हो तो (ससट्ठकप्पेण) उन्हीं खरडे हुए हाथ और चमचा आदि से आहार ग्रहण कर (चरिज्ज) सयम यात्रा का निर्वाह करते हुए विचरना चाहिए। (जइज्ज) उपरोक्त कल्याणकारी विहारचर्या भगवतो ने फरमाई है इसलिए इसके पालन करने मे मुनियों को पूर्ण यत्न करना चाहिए।।6।।

अमज्ज मंसासि अमच्छरीया, अभिक्खणं निव्विगइं गया य।
काउस्सग्गकारी, सज्झाय जोगे पयओ हविज्जा।।7।।

अन्वयार्थ– (अमज्जमसासि) साधु को मद्य-मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का कदापि सेवन न करना चाहिए (अमच्छरीया) किसी से ईर्ष्या न करनी चाहिए (अभिक्खण) वार–बार (निव्विगइ गया) विगयों का त्याग करना चाहिए (अभिक्खण) पुन-पुन (काउस्सग्गकारी) कायोत्सर्ग करना चाहए (य) और (सज्झायजोगे) वाचना, पृच्छनादि स्वाध्याय मे (पयओ हविज्जा) सदा लगे रहना चाहिए।।7।।

न पडिन्नविज्जा सयणासणाइं, सिज्जं निसिज्जं तह भत्तपाणं।
गामे कुले वा नगरे व देसे, ममत्तभावं न कहिं पि कुज्जा।।8।।

अन्वयार्थ– मासकल्पादि की समाप्ति पर जव साधु विहार

करने लगे तब (सयणासणाइ) शयन-आसन (सिज्ज) शय्या (निसिज्ज) निषद्या (तहा) तथा (भत्तपाण) आहार-पानी आदि किसी भी वस्तु के लिए श्रावको से (न पडिन्नविज्जा) ऐसी प्रतिज्ञा न करावे कि जब मे वापिस लौटकर आऊ तव ये पदार्थ मुझे ही देना ओर किसी को मत देना (गामे) गाव मे (वा) अथवा (कुले) कुल मे (नगरे) नगर म (व) अथवा (देसे) देश मे (कहि पि) कही पर भी साधु को (ममत्तभाव) ममत्व भाव (न कुज्जा) न रखना चाहिए, यहा तक कि वस्त्र-पात्रादि धर्मोपकरणो पर एव अपने शरीर पर भी ममत्व भाव नही रखना चाहिए। ।8।।

गिहिणो वेयावडियं न कुज्जा, अभिवायण वदण पूयण वा।
असकिलिट्ठेहि समं वसिज्जा, मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी।।9।।

अन्वयार्थ– (मुणी) साधु (गिहीणो) गृहस्थ की (वेयावडिय) वैयावृत्य (वा) अथवा (अभिवायण वदण पूयण) अभिवादन-स्तुति, वन्दन-प्रणाम और पूजन-वस्त्रादि द्वारा सत्कार आदि कार्य न करे तथा (असकिलिट्ठेहि) सक्लेशरहित उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने वाले साधुओ के (सम) साथ (वसिज्जा) रहे (जओ) जिनके साथ रहने से (चरित्तस्स) सयम की (न हाणी) विराधना न हो।।9।।

न या लभेज्जा निउणं सहाय, गुणाहियं वा गुणओ समं वा।
इक्को वि पावाइ विवज्जयंतो, विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो।।10।।

अन्वयार्थ– (या) यदि कदाचित् (निउण) सयम पालन करने मे निपुण (गुणाहिय) अपने से अधिक गुणवान् (वा) अथवा (गुणओ सम वा) अपने समान गुणो वाला (सहाय) कोई साथी साधु (न लभेज्जा) न मिले तो (पावाइ) पाप कर्मो को (विवज्जयतो) वर्जता हुआ (कामेसु) कामभोगो मे (असज्जमाणो) आसक्त न होता हुआ पूर्ण सावधानी के साथ (इक्को वि) अकेला विचरे किन्तु शिथिलाचारी एव पासत्थो के साथ न विचरे।।10।।

संवच्छरं वावि पर पमाण, बीअं च वासं न तहि वसिज्जा।
सुत्तस्स मग्गेण चरिज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ।।11।।

अन्वयार्थ– (सवच्छर) वर्षाकाल मे चार मास (च) और (वावि) बाकी समय मे एक मास रहने का (पर) उत्कृष्ट (पमाण) परिमाण है– इसलिए जहा पर चातुर्मास किया हो अथवा मासकल्प किया हो (तहि) वहा पर (बीय) दूसरा (वास) चातुर्मास अथवा मासकल्प (न वासिज्जा) न करना चाहिए क्योकि (सुत्तस्स अत्थो) सूत्र एव उनका अर्थ (जह) जिस प्रकार (आणवेइ) आज्ञा दे, उसी प्रकार (सुत्तस्स) सूत्रोक्त (मग्गेण) मार्ग से (भिक्खू) मुनि को (चरिज्ज) प्रवृत्ति करनी चाहिए।।11।।

भावार्थ– वर्षा ऋतु मे जैन साधुओ को एक स्थान पर चार महीने और अन्य ऋतुओ मे अधिक से अधिक एक महीने तक ठहरने की शास्त्र की आज्ञा है। जिस स्थान पर एक बार चातुर्मास किया हो, दो चातुर्मास दूसरी जगह करने के बाद ही फिर उस स्थान पर चातुर्मास कर सकता है। इसी प्रकार जहा मासकल्प किया हो, उसी जगह फिर मासकल्प करना दो महीने के बाद ही कल्पता है।

जो पुव्वरत्तावररत्तकाले, संपेहए अप्पगमप्पएणं।
किं मे कडं किं च मे किच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं समायरामि।।12।।

अन्वयार्थ– (जो) साधु को (पुव्वरत्तावररत्तकाले) रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर मे (अप्पग) अपनी आत्मा को (अप्पएण-अप्पगेण) अपनी आत्मा द्वारा (संपेहए-सपिक्खए) सम्यक् प्रकार से देखना चाहिए अर्थात् आत्मचिन्तन करते हुए इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) मैने (कि) क्या–क्या (किच्च) करने योग्य कार्य (कड) किये हैं (च) और (कि) कौन-कौन से तपश्चरणादि कार्य करना (मे) मेरे लिए (सेस) अभी बाकी है और (कि) वे कौन-कोन से कार्य है (सक्कणिज्ज) जिनको करने की मेरे मे शक्ति तो हे किन्तु

(न समायरामि) प्रमादादि के कारण मै उनका आचरण नहीं कर रहा हू।।12।।

कि मे परो पासइ कि च अप्पा, कि वाऽह खलिय न विवज्जयामि।
इच्चेव सम्म अणुपासमाणो, अणागय नो पडिबध कुज्जा।।13।।

अन्वयार्थ– साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) जव मै सयम सम्बन्धी कोई भूल कर वैठता हू तो (परो) दूसरे लोग- स्वपक्ष–परपक्ष वाले सभी लोग मुझे (कि) किस घृणा की दृप्टि से (पासइ) दखते है (च) और (अप्पा) मेरी खुद की आत्मा (कि) क्या कहती हे (वा) और (अह) मै (कि) अपनी किन-किन (खलिय) भूलो को (न विवज्जयामि) अभी तक नही छोड सका हू और क्यो नही छोड सका हू ? अब मुझे इन सब भूलो को छोडकर सयम मे सावधान रहना चाहिए (इच्चेव) जो साधु इस प्रकार (सम्म) अच्छी तरह (अणुपासमाणो) विचार एव चिन्तन करता है वह (अणागय) भविष्य मे (नो पडिबध कुज्जा) दोषो से छुटकारा पा जाता है अर्थात् फिर वह किसी प्रकार का दोष नहीं लगा सकता।।13।।

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं, काएण वाया अदु माणसेण।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा, आइन्नओ खिप्पमिव क्खलीणं।।14।।

अन्वयार्थ– (इव) जिस प्रकार (आइन्नओ) जातिवान् घोडा (क्खलीण) लगाम का सकेत पाते ही विपरीत मार्ग को छोडकर सन्मार्ग पर चलने लग जाता है उसी प्रकार (धीरो) बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि (जत्थेव) जब कभी (कइ) किसी भी स्थान पर (माणसेण वाया अदु काएण) अपने मन, वचन और काया को (दुप्पउत्त) पापकार्य की तरफ प्रवृत्त होते हुए (पासे) देखे तो (खिप्प) तत्काल (तत्थेव) उसी समय (पडिसाहरिज्जा) उनको उस पापकार्य से खीच कर सन्मार्ग मे लगा दे।।14।।

जस्सेरिसा जोग जिइंदियस्स, धिईमओ सप्पुरिसस्स निच्चं।
तमाहु लोए पडिबुद्ध जीवी, सो जीयई संजम जीविएणं।।15।।

अन्वयार्थ– (जिइदियस्स) जिसने चचल इन्द्रियो को जीत लिया है (धिईमओ) जिसके हृदय मे सयम के प्रति पूर्ण धैर्य है (जस्स) जिस (सप्पुरिसस्स) सत्पुरुष ने (जोग) मन, वचन, काया रूप तीनो योगो को (एरिसा) अच्छी तरह वश मे कर लिया है (त) ऐसे महापुरुषो को (लोए) लोक मे (पडिबुद्ध जीवी) प्रतिबुद्धजीवी- सयम मे सदा जाग्रत रहने वाला (आहु) कहते है क्योकि (सो) वह (निच्च) सदा (सजम जीविएण) सयम जीवन से ही (जीयई) जीता है।।15।।

अप्पा खलु सयय रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहि।
अरक्खियो जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ।।16।।
त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– (सव्विदिएहि) सब इन्द्रियो को वश मे रखने वाले (सुसमाहिएहि) सुसमाधिवत मुनियो को (सयय) सदा (अप्पा) अपनी आत्मा की (खलु) सब प्रकार से (रक्खियव्वो) रक्षा करनी चाहिए अर्थात् उसे तप, सयम मे लगाकर पापकार्यो से उसे बचाना चाहिए क्योकि (अरक्खियो) जो आत्मा सुरक्षित नहीं है वह (जाइपहं) जाति पथ को (उवेइ) प्राप्त होती है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फसकर संसार मे परिभ्रमण करती रहती है और (सुरक्खियो) सुरक्षित अर्थात् पापकार्यो से निवृत्त आत्मा (सव्वदुहाण) सब दु.खो का अन्त करके (मुच्चइ) मोक्ष को प्राप्त हो जाती है।।16।। (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

।। इति चूलिकासहित श्री दशवैकालिक सूत्र का अन्वय सहित शब्दार्थ समाप्त।।